❀ ॐ तत्सत् ❀

[वै]दिक धर्म-प्रचार-ग्रन्थ-माला, संख्या ८

पत्र-पुष्प

लेखक

श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

महाविद्यालय, ज्वालापुर

प्रकाशक

रामस्वरूप गुप्त 'रमेश'

भूतपूर्व सहकारी सम्पादक 'प्रताप'

भारती-भवन, अलीगढ़

मुद्रक

महाशय रामनारायण

हीरालाल प्रिंटिंग वर्क्स, अलीगढ़

प्रथम संस्करण | आर्य्य संवत्सर १९७२९४९०३७ | मूल्य १॥)

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं
यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतम्,
अश्नामि प्रयतात्मनः ॥"
[गीता ९–२६]

"किसने ?" वह आश्चर्य में बोला।

"वह जो रात को गा रही थी···आपकी रत्नाबाई।" जमना ने पलकें गिराते हुए झट कहा।

रत्ना का नाम सुनते ही वह काँप कर रह गया। जिसकी स्मृति को वह मन से निकालने का प्रयत्न कर रहा था, उसीका चित्रण उसके मस्तिष्क-पट पर फिर उभर आया, एक कसक-सी उठी और हृदय को चीरती हुई निकल गई। जब कुछ देर तक वह मौन रहा तो फिर जमना ने पूछा—

"आप जानते हैं उसे ?"

"हूँ।"

"सुना है, बड़ा सुन्दर गाती है।"

"हाँ···रात भी तो गा रही थी।"

"किन्तु मुझे नहीं भाया।"

"क्यों ?" एकाएक प्रकाश ने पूछा।

"जो गायक समय-अनुसार राग न गा सके वह गायक कैसा ? आप ही कहिये, क्या कोई ऐसे हर्ष के अवसर पर यूँ दर्द-भरे गीत गाता है। जमना ने बड़े भोलेपन से पूछा।

प्रकाश फिर भी चुप रहा। वह किसी सोच में खोया हुआ था। जमना उसके कोट के बटन से छेड़ती हुई उसकी ओर देखने लगी। एकाएक उसे इस बात का भान हुआ कि वह पहली ही बार उससे कितना घुल-मिल गई है···यह विचार आते ही वह अलग हो गई। कुछ देर बाद प्रकाश ने बात आरम्भ की।

"तुम उसे कैसे जानती हो ?"

"पुराना परिचय है।"

"कब से ?"

"बसंत-बहार के उत्सव पर जो वह आई थी···उस रात हम दोनों बड़ी देर तक बाग में बैठी बातें करती रहीं। आप कैसे हैं···यह सब

उसीसे ज्ञात हुआ।

प्रकाश सुनता रहा और उसने कोई उत्तर न दिया। उसकी आँखों के सम्मुख उस रात का दृश्य घूम गया, जब रत्ना उसके निमंत्रण पर बसंत-वहार के उत्सव पर यहाँ आई थी। एकाएक उसे विचार आया कि कहीं जमना ने अपने मन की व्यथा तो उससे नहीं कह दी, कहीं वह उसके प्रति जमना के प्यार से प्रभावित होकर तो अलग नहीं हो गई··· और कौन जाने उसको सुखी वनाने के लिए उसने अपनी आशाओं, इच्छाओं की वलि दे दी हो। उसके मस्तिष्क में एक साथ कई विचार चक्कर लगाने लगे। रत्ना का महल में उदास रहना, उसका कुम्हलाया हुआ चेहरा, प्रतियोगिता में भाग न लेना···क्या यह सव इस वात का प्रमाण नहीं कि रत्ना ने अपने प्रेम का वलिदान दे दिया हो?

वह अधिक न सोच सका और चुपचाप कमरे से वाहर निकल गया। जमना मूर्तिमान हो उसे देखती रही और पलंग की टेक का सहारा लेकर वैठ गई।

रात धीरे-धीरे वीतती गई, आशाएँ सिसकती रहीं और अँधेरा रूप वदलता रहा; किन्तु जमना गुमसुम वहीं वैठी रही। प्रकाश रात-भर कमरे में न लौटा और जमना व्यर्थ उसकी प्रतीक्षा करतीरही। वह दस वर्ष से जिस मंज़िल की ओर अग्रसर थी, आज वहाँ पहुँचकर भी भटक रही थी। वह कलाकार प्रीतम की माया को समझने का प्रयत्न भी करती तो उसकी वुद्धि वहाँ न पहुँच सकती।

सोचते-सोचते न जाने कब उसकी आँख लग गई। उसे होश तव आया जब किसीने पौ फटते ही उसके कान में कहा—"प्रकाश घर से चला गया।" उसने सुना और निष्प्राण-सी औंधी पलंग पर जा लेटी। इस अचानक सूचना ने मानो उसे वरफ़ के ढेर में दवा दिया। उसे कोई सुध न थी; वस मन में एक ही विचार था, एक अनुभव-सा···और वह था उसका प्रकाश···

प्रकाश जब राजमहल में पहुँचा तो उसे पहली सूचना रत्ना के विषय में ही मिली । वह वहाँ से जा चुकी थी। वह अचानक सख्त बीमार हो गई थी और उस्ताद बुन्देअलीखाँ उसे अपने संग ले गये थे। उन्होंने दरबारी नौकरी छोड़ दी थी। गोरी के मुँह से यह सूचना सुनकर उसे खेद हुआ। उसने यह सूचना देते समय उसे रत्ना का लिखा एक पत्र भी दिया जिसे उसने काँपती उँगलियों से खोला और उत्सुकतापूर्वक पढ़ने लगा। उसने लिखा था—

"शादी मुबारक हो···नसीब हुए तो कभी मुलाकात होगी।

—रत्ना।"

कितने संक्षिप्त शब्द थे, किन्तु इनमें पीड़ा का एक संसार छिपा था। प्रकाश कितनी ही देर चुपचाप उस पत्र को देखता रहा और फिर धैर्य से काम लेते हुए गोरी से पूछने लगा—

"कब गई?"

"आज सवेरे ही···"

प्रकाश ने और कोई बात न की और भीतर अपने कमरे में चला गया। कुछ देर यूँ ही खोया हुआ कमरे में खड़ा रहा और फिर चबूतरे पर आकर खड़ा हो गया। सामने रत्ना के कमरे का चबूतरा था जहाँ कभी वह खड़ी हुआ करती थी। आज वह चबूतरा खाली था, एक आत्माहीन शरीर के समान झाँक रहा था। प्रकाश दुःखी मन लेकर भीतर लौट आया और व्यग्र मन को शांति देने के लिए उसने संदूक में से सितार निकाला और तख्तपोश पर बैठकर बजाने लगा।

तारों की झनझनाहट से महल की दीवारें गूँजने लगीं, हवा के झोंके नृत्य करने लगे। साँवली और गोरी अपने द्वार की ओट में खड़ी होकर साज़ सुनने लगीं। आज उसके साज़ में एक अनोखी वेदना थी जैसे उसमें से निःश्वास उठ रहे हों···वह सोचने लगी, यह कैसी आवाज़ है, यह कैसा सुर है! आज इन तारों से दर्द की ध्वनि क्यों निकल रही है? वह सुनती रही, सोचती रही और वह साज़ बजाता रहा।

बड़ी देर तक वह अपनी धुन में खोया सितार लिए बैठा रहा और जब वह थककर सितार पर गिरा तो दोपहर हो चुका था। उसके मनोमस्तिष्क में हलचल मची थी, मानो नदी बाँध तोड़ निकली हो, एक ही विचार, एक ही आवाज़···रत्ना कहाँ गई ? रत्ना क्यों गई ?

दिन बीतते गये। मानव-हृदय बड़ा शक्तिमान है, वह हर दुख को सह जाता है····· समय बड़े-से-बड़े घाव को भर देता है। प्रकाश की पीड़ा धीमी पड़ चुकी थी। वह प्रतिदिन संगीत की ओर खिचा चला आता था, बस एक ही ध्येय था, एक ही लक्ष्य था····· वही लगाव ···संगीत······संगीत ही उसका प्रेम था, वही उसकी प्रेमिका थी, पत्नी थी, उसका जीवन था और इसी संगीत में वह खो गया।

उस्ताद बुन्देअलीखाँ के चले जाने के बाद बस राज-दरबार में वही चोटी का गायक था। अब उसका कार्य बढ़ गया था। कोई सभा हो, कोई बैठक हो उसकी उपस्थिति आवश्यक थी और राजमहल में आये दिन कोई-न-कोई ऐसा अवसर आया ही रहता, कभी कोई अतिथि-विशेष आ जाता, कभी हिज़ हाईनेस बुला भेजते और कभी महारानी साहिबा को मन-बहलाने के लिए मधुर संगीत सुनने की आवश्यकता होती। वह संगीत में अपने दुख को डुबो देना चाहता था ; किन्तु फिर भी जब वह इससे अवकाश पाकर एकांत में बैठता तो रत्ना की याद कहीं से आकर उसके मन में अपना स्थान जमा लेती ······उसकी छवि उसके मस्तिष्क में उभर आती।

एक शाम जब वह लक्ष्मी-मंदिर से पूजा के बाद महल लौटा तो अपने कमरे में प्रवेश करते ही सहसा उसके पाँव रुक गये। उसे क्षण-भर के लिए तो यूँ प्रतीत हुआ जैसे वह किसी दूसरे के कमरे में आ गया हो। वह वापस जाने के लिए पलटा और फिर रुक गया···यह तो उसका अपना कमरा था।

"कहाँ चल दिये ?" एक पतली ध्वनि ने उसे सम्बोधित किया।

प्रकाश ने आश्चर्यचकित मुड़कर एक पग पीछे उठाया। सामने

कालीन पर जमना बैठी थी। पति को देखते ही वह उठ खड़ी हुई और अपना आँचल सँवारते हुए झुककर उसने उसके पाँव छूए। प्रकाश काँपकर पीछे हट गया और काँपते हुए स्वर में बोला—

"तुम्हें यहाँ कौन लाया है ?"

"गुरूजी······बाज़ार गये हैं।"

"तुम लोग कब आये ?"

"दोपहर को आये थे।"

"सूचना तो दे दी होती अपने आने से पहले।" प्रकाश ने कुछ झेंपते हुए कहा।

"पहले तो विचार हुआ था ; किन्तु फिर जान-बूझकर रुक गये।"

"क्यों ?"

"कहीं हमारा आना सुनकर आप यहाँ से भी न चल पड़ें।" जमना ने कुछ व्यंग से यह बात कही और फिर अपने होंठों को काटती हुई प्रकाश के समीप आ ठहरी। जब प्रकाश ने कोई उत्तर न दिया तो जमना बोली—

"आप तो बड़े महान कलाकार ठहरे····· राज-गायक·····स्वर में टीस लिये हृदयों की धड़कनें जाँचने वाले······फिर आपने यह क्यों सहन किया कि कोई आपके लिए तड़पता रहे······और आपको इसका भान भी न हो····· आप चुपके से बिना बताये चले आए।"

"जमना·····!" प्रकाश ने भर्राई हुई आवाज़ में उसे पुकारा और दोनों कंधों से थामकर उसकी भीगी पलकों को देखने लगा। उसकी आँखों में आँसू तैर रहे थे। रुँधे हुए कंठ से वह फिर बोली—

"मैं आपको भायी नहीं······मुझसे कह दिया होता······दुनियाँ को तमाशा दिखाने से आपको क्या मिला ?

"जमना····· नहीं, नहीं······ऐसी बात नहीं·······।"

"तो क्या बात है ? आप मुझ से दूर क्यों चले आये ?"

"न जाने क्यों ? यह तो दिमाग़ में कभी-कभार एक विकार-सा

उत्पन्न हो जाता है तो कोई भूलकर बैठता हूँ।"

"तो मैं समझ लूं आपने मेरा अपराध क्षमा कर दिया ?"

अपराध कैसा···?" उसने धीरे-से कहा, "अपराध तो मेरा था जो चला आया।"

जमना के हृदय का बोझ कुछ हल्का हो गया। क्षण-भर में सब गिले-शिकायतें समाप्त हो गईं। प्रकाश के इस व्यवहार को उसने कलाकार की लगन जानकर विसार दिया; किन्तु उसके मन की पीड़ा का अनुमान वह न लगा सकी, इसे समझने में वह असमर्थ थी।

जमना के आ जाने से प्रकाश के जीवन में कुछ परिवर्तन अवश्य आ गया था। वह सवेरे उठता तो प्रभात की किरणों के समान जमना का खिला हुआ मुखड़ा उसका स्वागत करता। उसे तनिक भी कष्ट न करना पड़ता और सब सुविधाएँ प्राप्त हो जातीं। आवश्यकता का हर सामान उसे समय पर उपलब्ध हो जाता। वह उसके सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखती। उसके कारण उसे आराम का समय भी अधिक मिलने लगा था। वाह्य रूप से वह सन्तुष्ट दीखता था; किन्तु उसका अन्तर सुखी न था, उस सागर के समान जो ऊपर से तो शान्त हो; किंतु उसकी गहराई में एक कोलाहल भरा हो। एक छिपी हुई टीस रह-रहकर उसके अंतस्थल से उभरती और भीतर-ही-भीतर उसकी क्षणिक-सी शांति को छिन्न-भिन्न कर देती· और यह टीस थी रत्ना की याद की···इस पीड़ा, इस तड़प का रहस्य उसके प्रति उसके असीम प्यार में निहित था। जब कभी वह एकान्त में बैठा अपने जीवन को मुड़कर झाँकता तो उसे स्वयं ही हँसी-सी आ जाती और यह हँसी भी पीड़ा का एक रूप थी। कभी बैठे-बैठे वह ध्यानपूर्वक जमना को निहारने लगता और सोचता, कितनी सुन्दर है वह, कितनी सुघड़, शिष्ट, कितना धैर्य है उसमें···वह उसका हर संकेत समझती है·· और कितना ध्यान रखती है···जब वह दरबार से थककर घर आता है तो वह किस प्रकार पूर्ण कोमलता से उसका मन रिझाती है···जमना सचमुच एक सरोवर

है स्नेह और सेवा का, फिर भी न जाने क्यों वह उस अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती जो उसके जीवन में रत्ना के जाने से उत्पन्न हो गया था। जमना से प्यार करके अपना सब-कुछ उसे सौंपकर वह रत्ना को भुलाने का प्रयत्न करता; किन्तु उसके सब यत्न असफल हो जाते ··वह मुड़-मुड़ के उसके मस्तिष्क के छायापट पर आ जाती···वह उसकी यादों की निधि का सबसे बहुमूल्य मोती थी। वह सोचता, आखिर वह कौन-सी मजबूरी थी जो उसे सदा के लिए उससे दूर ले गई, और यह विचार उसे और तड़पा जाता। कई बार उसने सोचा कि जमना से पूछे कि बसंत-बहार के उत्सव पर उसमें और रत्ना में क्या बात चीत हुई; किन्तु इसे उचित न जानकर वह फिर चुप हो जाता।

धीरे-धीरे उसकी मानसिक उलझनें बढ़ने लगीं। मनोमस्तिष्क के इस संघर्ष में प्रायः कलाकार की सहायता मदिरा ही करती है। प्रकाश ने भी उसे अपना साथी बना लिया। पहले उसने केवल चाव के लिए पीना आरम्भ किया; किन्तु, अब अपने-आपको इस कठोर वास्तविकता की दुनिया से दूर ले जाने के लिए वह शराब में डूबा रहने लगा।

दिन बीतते गये, प्रकाश पीता चला गया और गाता चला गया। शराब से अवकाश मिलता तो वह संगीत में खो जाता। इस लगन ने उसकी कला को चमका दिया और उसकी प्रसिद्धि प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसके नाम की चर्चा अब दूर-दूर होने लगी और उसे बड़ी-बड़ी सभाओं में आमंत्रित किया जाने लगा; किन्तु वह जयपुर छोड़कर कहीं भी जाने से इन्कार कर देता। हिज़ हाईनेस भी उसकी कला से अत्यधिक प्रसन्न थे, उनके दरबार में वह रत्न था जिसकी आभा दूर-दूर तक पहुँच रही थी·· वह आये दिन इनाम से उसकी झोली भरते रहते।

जमना भी प्रसन्न थी। इस छोटी-सी आयु में ही उसे अपने पति के कारण सब सुख-सुविधाएँ प्राप्त थीं···उसके स्वप्न अब अधूरे न रहे थे। हाँ, कभी-कभार वह प्रकाश को शराब के नशे में डूबे हुए देखकर

घबरा जाती ; किन्तु फिर अपने मन को यह सोचकर सांत्वना देती कि वह कलाकार हैं और कला और मदिरा का गूढ़ सम्बन्ध है। इससे कला को प्रेरणा मिलती है और फिर हर समय राजाओं-महाराजाओं के साथ रहने से कोई बिना पिये कैसे रह सकता है ? स्वयं उसके अपने भैया और पिता भी तो प्रायः पीते रहते हैं...और उसके स्वामी तो कलाकार हैं...ऐसी झूठी बातों से स्वयं अपने मन को बहलाना जमना को खूब आ गया था।

आठ

चाँदमहल आज रात यूँ मौन और उदास था जैसे कोई विधवा युवती शोक मना रही हो, और बात भी कुछ ऐसी ही थी। आज वहाँ का सिरताज चल बसा था। कुछ दिन बीमार रहने के बाद अचानक हृदय-रोग से हिज़ हाईनेस का स्वर्गवास हो गया था। प्रजापति की मृत्यु पर पूरा राज्य-शोक मना रहा था।

हिज़ हाईनेस की मृत्यु से प्रकाश को यूँ अनुभव हुआ जैसे उसने अपना यहाँ सब-कुछ पाया क्षण-भर में खो दिया हो···उसका राजमहल से लगभग दो वर्ष का सम्बन्ध अकस्मात ही टूट गया था। वह उदास, चुपचाप अपने कमरे की खिड़की में बैठा राजभवन को देख रहा था जहाँ आज एक दीपक भी न जल रहा था···शोक की रात कितनी नीरस, कितनी कठोर और कितनी काली होती है ··यह उसने आज ही अनुभव किया था!

हिज़ हाईनेस की अपनी कोई सन्तान न थी और अब राजगद्दी का मालिक उनका गोद लिया नन्हा-सा बालक था जिसके युवा होने तक राज-शासन की बागडोर प्रधान मन्त्री के हाथ में आ गई थी। प्रधान मन्त्री ने शासन सँभालते ही सबसे पहली आज्ञा रियासत-भर में महाराज की मृत्यु पर एक वर्ष तक शोक मनाये जाने की लागू की। इस आज्ञानुसार राजमहल में भी नाच-रंग, गाने-बजाने की मनाही कर दी गई। प्रकाश ने सोचा, इस स्थिति में उसका यहाँ क्या काम···जब नृत्य और संगीत ही नहीं तो वह राजमहल में ठहर कर क्या करेगा···यही तो उसकी

आत्मा है, उसका जीवन है और यदि एक वर्ष तक टूटे-साज के समान उसे व्यर्थ एक कोने में पड़े रहने पर विवश किया गया तो उसकी कला मर जायेगी··· और हो सकता है यह साज़ सदा के लिए बेकार हो जायें ··· वह अपनी कला में निपुण है, वह स्वतन्त्र है, वह अपने-आपको इन बंधनों में क्यों जकड़े ···आत्मा की सन्तुष्टि उसका परम कर्त्तव्य है, दासता नहीं···उसे ऐसी दासता नहीं चाहिये जिसमें कला की हीनता हो।

यह विचार आते ही उसने त्याग-पत्र देने का निश्चय कर लिया ; किन्तु उसे इसका अवसर ही न मिल सका इसलिये कि प्रधान मंत्री ने स्वयं ही उसे और दूसरे कई कलाकारों को एक नई आज्ञा द्वारा राज्य-सेवा से अलग कर दिया। इन नौकरी से अलग किये जाने वालों में गोरी और साँवली का नाम भी था। इस आज्ञा-पत्र ने महल का रंग-रूप ही बदल दिया। प्रकाश को अपनी नौकरी छूटने का तनिक भी दुःख न था, उसे दुःख था तो इस बात का कि और बेचारे कितने कलाकारों को अपनी आजीविका के लिए द्वार-द्वार भटकना पड़ेगा। महाराज स्वयं कला-प्रेमी थे और छोटे-मोटे कितने ही कलाकार उनकी छत्र-छाया में पलते थे।

अब उनके वहाँ रुकने का कोई कारण न था। उसने स्वयं अपने पल्ले से गोरी और साँवली को पाँच-पाँचसौ रुपये दिये और उन्हें विदा करने के बाद स्वयं एक रात उसने महल छोड़ दिया और अपने गाँव सुजान-गढ़ में चला गया। इस महल के साथ उसकी कई सुन्दर स्मृतियाँ सम्ब-न्धित थीं···यहाँ उसकी कला शान चढ़ी थी, यहाँ उसने रत्ना से प्रेम किया था···यहाँ वह उसकी याद को मन में सँजोये बैठा था और अब वह उस महल को छोड़ देने पर विवश था। जब वह महल से चला तो जमना गर्भवती थी और उसके लिए इस दशा में इतनी लम्बी यात्रा करना ठीक न था ; किन्तु प्रकाश अब एक दिन भी और वहाँ रुकना न चाहता था।

जब गुरु गिरजानन्द और दूसरे सम्बन्धियों ने उसकी नौकरी के छूट

जाने का सुना तो उन्हें बड़ा खेद हुआ। इस बात का दुःख तो उसे भी था; किन्तु उसने इसे कोई महत्व देना उचित न समझा और फिर अब जबकि जमना गर्भ की इस स्थिति में थी, वह अपनी चिन्ता से उसे दुखी न करना चाहता था।

ऐसी ही सुजानगढ़ में आये हुए उसे एक महीना हो गया। वह अपने घर के अतिथि-गृह में अकेला रहता था और जमना अपने पिता के घर में थी। इस बीच में उसने महाराजा नेपाल को एक पत्र लिखा; किन्तु उसका कोई उत्तर न मिला। जयपुर में होते हुए उसके संगीत से प्रसन्न होकर एक वार स्वयं उन्होंने उसे नेपाल आने का निमन्त्रण दिया था और इस समय उसके पत्र के उत्तर में उनके मौन ने उसका हृदय छलनी कर दिया। कला और भिक्षा इनका कोई जोड़ नहीं, भीख माँगने से तो कलाकार के लिए भूखे मर जाना अच्छा है···उसने किसी राजा-महाराजा की नौकरी न करने का निश्चय कर लिया। उसने कहीं भी आना-जाना वन्द कर दिया और चुप अपने अतिथि-गृह में अकेला पड़ा साज़ बजाता और शराब पीता रहता।

कुछ दिन वाद जमना की गोद हरी हो गई। भगवान ने उसे एक चाँद-सी वेटी प्रदान की। प्रकाश ने यह सूचना सुनी तो क्षण-भर के लिए हर्ष से झूम उठा; किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मन को एक चोट-सी लगी। वह सोचने लगा, यदि यह चाँद चाँदमहल में उभरता तो कितनी धूम रहती, नाच-गाना, खाना-पीना···उनकी खुशियों की कोई थाह न होती···हिज़ हाईनेस और महारानी स्वयं बधाई देने के लिए आते, उसकी चाँद-सी बिटिया का मुखड़ा चूम लेते··किन्तु उसने सुजानगढ़ में जन्म लिया था और वह भी इस अवस्था में···घर में भगवान की कृपा से सब-कुछ होते हुए भी वह महल वाली सुख-सुविधा कहाँ थी·· यहाँ तो ऐसे प्रतिदिन कई बच्चे जन्म लेते हैं, और उसकी बेटी में क्या अनोखापन था···वह रियासत का प्रसिद्ध और नामी गायक भी न था, कला हुई-न-हुई, कौन जानता है···वह गाँव के साधारण व्यक्तियों

जैसा एक गुमनाम-सा आदमी रह गया था जो जीवन के ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर चले जा रहे हैं, रींगते जा रहे हैं, जिनकी अपनी कोई आभा नहीं·· अपने कुछ निकट सम्बन्धियों के अतिरिक्त उनका कोई अस्तित्व नहीं, उन्हें कोई नहीं जानता·· यह भी कैसा जीवन है ?···उसका हृदय अनायास फुंक उठा और वह अतिथि-गृह से वाहर निकल आया।

रात के लगभग दस वजे होंगे जव अपने कमरे से निकलकर वह ससुराल के घर की ओर रवाना हुआ। सवेरे से उसे कई सन्देश आ चुके थे ; किन्तु वह अभी तक अपनी वेटी को देखने न गया था। लोगों के भीड़-भड़क्के में उसे जमना से मिलना अच्छा न लग रहा था इसीलिये रात के मौन का सहारा लिये वह उससे मिलने अब निकल आया था।

ससुराल की ड्योढ़ी में पाँव रखते ही उसके हृदय की धड़कन तेज़ हो गई, टाँगें अनायास ही लड़खड़ाने लगीं। आँगन में अँधेरा था ; किन्तु वरामदे सें किसीके पाँव की चाप निरन्तर आ रही थी। सास के कमरे की ओर वढ़ते-वढ़ते वह अचानक रुक गया और कुछ अँधेरे का आश्रय लिये आँगन में ठहरने के पश्चात् वह कोने वाले उस कमरे की ओर वढ़ा जहाँ जमना थी।

उसने काँपती उँगलियों से द्वार पर लटके पर्दे को ज़रा-सा एक ओर किया और झाँककर भीतर देखने लगा। निर्बल जमना सामने पलंग पर लेटी थी। उसका फूल सा मुखड़ा बिलकुल पीला लग रहा था। साथ ही उसकी छोटी वहन रेशमाँ पलंग पर बैठी उसके मुँह में चम्मच से कोई दवाई उँड़ेल रही थी। प्रकाश दवे-पाँव भीतर आ गया। उसकी ओर पीठ होने के कारण रेशमाँ ने उसे देखा नहीं। क्षण-भर द्वार के पास खड़ा रहने के पश्चात् प्रकाश धीरे-से आगे बढ़ा और एक ओर रखे पालने के पास जा कर खड़ा हो गया। पालने में सोई उसकी नन्ही बेटी थी। प्रकाश उसके छोटे-से लाल मुखड़े को देखने लगा। उसे यूँ लगा जैसे इस नन्ही बालिका नें अपनी माँ का पूरा रक्त निचोड़ लिया हो

इसीलिए तो वह इतनी पीली पड़ गई थी और वह बिजली के लाल लट्टू के समान चमक रही थी।

रेशमाँ दवाई देकर पलंग से उतरी तो अनायास उसके मुँह से निकला "जीजाजी ! आप···!" उसकी आवाज़ सुनते ही जमना ने आँखें घुमाकर उधर देखा। प्रकाश घबराहट और शर्म से पिघला जा रहा था। इतनी देर तक उसकी कुशलता न पूछने से उसका मन आत्म-ग्लानि कर रहा था। क्षण-भर कमरे में मौन रहा और दोनों एक-दूसरे की ओर देखते रहे। जमना की आँखों में पानी भर आया और उसके होंठों से बड़ी पतली आवाज़ में निकला, "आप···!" प्रकाश दो पग और बढ़कर उसके पास जा खड़ा हुआ। रेशमाँ भागकर उसके आने की सूचना देने के लिए बाहर जाने लगी ; किन्तु प्रकाश ने झट उसकी बाँह थाम ली और उसे रोकते हुए बोला—

"किसीसे मत कहना···मैं आया हूँ।"

"क्यों ?" रेशमाँ ने पूछा।

"उनके लिए कल आऊँगा, आज केवल तुम्हारी दीदी के लिए आया हूँ," प्रकाश ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। रेशमाँ ने और कोई बात न की और मुस्कराकर बाहर का द्वार बन्द करके चुपचाप कमरे से चली गई। उसके चले जाने के बाद प्रकाश जमना के पास ही बैठ गया और उसके हाथ को अपने हाथ में लेते हुए बोला—

"कैसी हो, जमना ?"

"अच्छी हूँ।" जमना के होंठों पर हल्की-सी, किन्तु दुख-भरी हँसी दौड़ आई।

"सवेरे से तुम्हारे पास आने की सोच रहा था ; किन्तु साहस न हुआ।"

"क्यों ?"

"सबके सामने आते शर्म आती थी······लोग क्या कहेंगे।"

"तो न आते···लोग तो अब भी कह रहे हैं।"

"क्या ?"

"बेटी आई है।"

"मेरा अर्थ बेटी से न था···वह तो लक्ष्मी का अवतार है।"

"हाँ···इसीलिए तो लक्ष्मी हमसे रूठ गई।"

"यह कैसी बातें कर रही हो !"

"जो लोग कह रहे हैं···कैसा पाँव पड़ा है कि बनी-बनाई दरबारी नौकरी छूट गई।"

"कहने दो लोगों को · रुपया-पैसा तो हाथ का मैल है········ फिर आ जायेगा।"

यह कहकर प्रकाश पालने की ओर देखने लगा जहाँ कपड़े में लिपटी उनकी नन्ही बच्ची सो रही थी। वहाँ से दृष्टि हटाकर उसने जमना को देखा और फिर सामने दीवार को देखने लगा। जब मौन असहनीय हो गया तो जमना ने पूछा—

"क्या सोच रहे हैं ?"

"बेटी आई है···सोचता हूँ एक ऐसा जशन मनाऊँ कि धूम मच जाये।"

"इसके लिए धन कहाँ से आयेगा ?"

"अभी तो ·ने के लिए बहुत है।"

"दो महीने से बैठे खा रहे हैं···न जाने कब तक यूँही चले··· इसीलिए इन दिनों माँ-बाप पर बोझ बनी बैठी हूँ।"

"जमना ! मैंने तो ऐसा न सोचा था···अब भी भगवान् की दया से तुम्हारे पास काफी-कुछ होना चाहिये।"

"क्या दो-चार हज़ार रुपया बहुत कुछ होता है ?"

"नकद रुपया न सही···यह हज़ारों रुपयों के हीरे-जवाहरात किस काम आयेंगे···मैं तुम्हारे माँ-बाप पर अधिक बोझ नहीं डालना चाहता ······जो खर्च हो इसीमें से कर सकती हो···हमारी बेटी के जन्म की खुशी पूरे धूम-धाम से होनी चाहिये ··लोग न कहें कि बेटी किसी

भिखारी की है।'

"ओह ! तो आपकी दृष्टि उन गहनों पर है जो मेरी अन्तिम पूँजी हैं .....माना यह सब आपको दरबार से इनाम में मिला है ; किन्तु इसे यूँ लुटाना भी तो ठीक नहीं...अब हम बेटी वाले हैं, इतना तो सोचिये .. भगवान् न करे कल इससे बुरे दिन भी आ जायें ?"

जमना की यह बातें प्रकाश को अच्छी न लगीं। वह इस दशा में उससे उलझना भी न चाहता था इसलिये चुपचाप उठकर तेजी से बाहर चला गया। जमना उसे यूँ अचानक जाते देखकर चकित रह गई। उसने पुकारकर उसे रोकना चाहा; किन्तु वह बाहर जा चुका था। उसने जाते हुए मुड़कर अपनी नन्ही बच्ची की ओर भी न देखा।

दूसरे ही दिन से प्रकाश पर एक नई धुन सवार हो गई। उसने सोचा उसे शीघ्र ही अपने भविष्य के विषय में कोई महत्वपूर्ण निश्चय कर लेना चाहिये। दो महीने बेकार बैठे रहने के बाद उसकी अपनी पत्नी उस पर विश्वास न कर सकी तो दूसरों का क्या.. वह चुपचाप वहाँ से कहीं चला जाना चाहता था ; किन्तु जमना को इस दशा में छोड़ जाना भी ठीक न था। वह एक असमंजस में पड़ गया, एक मानसिक दुविधा में, और जब उसे कोई मार्ग न सूझा तो वह गुरूजी के आश्रम में जा निकला। गुरूजी उसके लिए पहले ही चिन्तित थे। प्रकाश ने अपने मन की व्यथा उन्हें सुनाकर परामर्श चाहा।

"तुम्हें झुकना होगा प्रकाश !" अनुभवी दृष्टि उसके मुख पर गाड़ते हुए गुरूजी बोले।

"कैसे...और क्यों गुरूजी ?"

"जीवन के लिए बेटा ! राजसी ठाट-बाट न सही, परन्तु जीने के लिए कुछ आजीविका तो आवश्यक ही है...मेरी मानो और कलकत्ता चले जाओ।"

"वहाँ किसलिये ?"

"मेरे एक मित्र हैं, श्रद्धानन्दजी...प्रसिद्ध कवि और लेखक हैं,

संगीत-विद्या के अच्छे जानने वाले हैं···कई ग्रामोफ़ोन कम्पनियों से जान-पहचान है · ज़रा भी अवसर मिला तो जीवन सुधर जायेगा···नाम होगा और भाग्य ने साथ दिया तो संगीतकारों में ऊँचा स्थान पाओगे।"

"तो कब जाना होगा मुझे ?"

"धीरज से···अभी तो बहू के उठने में दिन हैं··चालीस दिन तक तो·· "

"नहीं गुरूजी ! मैं अब एक दिन भी गाँव में रुकना नहीं चाहता।"

"नहीं बेटा, यह जल्दबाजी बहू के जीवन का रोग भी बन सकती है···तुम मुझ पर छोड़ दो · मैं सबको समझा लूँगा और यदि हो सका तो तुम्हें पहले ही भिजवा दूँगा।"

प्रकाश को गुरूजी पर पूरा भरोसा था। वह उनका कहा न टाल सकता था। उन्होंने उसके पिता और ससुर को समझा दिया और बेटी के जन्म के पन्द्रह दिन बाद ही उसे कलकत्ता जाने की आज्ञा मिल गई। जमना तो न चाहती थी कि वह उसे इस दशा में छोड़कर इतनी दूर परदेश चला जाये; किन्तु प्रश्न उनके भविष्य का था इसलिये विवशतः उसे चुप होना पड़ा।

कलकत्ता जाने से पूर्व प्रकाश जमना के पिता के घर उसे मिलने के लिए आया। जमना बच्चों को दूध पिलाकर अभी हटी थी। बाहर पति की आवाज़ सुनकर उसके मन की धड़कन तीव्र हो गई। वह उससे दूर जा रहा था, बड़ी दूर और उसे अकेले सुजानगढ़ में छोड़े जा रहा था। यह वियोग उसको असहनीय न हो जाये···बाहर द्वार पर प्रकाश के आने की आहट हुई तो वह बच्ची को उठाकर उसके पालने के पास आ गई और उसे लिटाकर धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। बच्ची की क्षण-भर में ही आँख लग गई थी और जमना की उँगलियाँ उसके कोमल शरीर को छू रही थीं। प्रकाश चुपके से भीतर आया और उसे पुकारा—"जमना !"

जमना ने सुना और धीरे से पलंग पोककर उसकी ओर देखा।

प्रकाश उसके समीप आ गया। जमना ने कोई बात न की और मौन खड़ी उसकी ओर देखती बच्ची का शरीर सहलाती रही।

"मैं कलकत्ता जा रहा हूँ।" प्रकाश ने मौन तोड़ते हुए फिर उससे कहा।

"जाते ही पत्र लिखियेगा · " जमना ने भर्राती हुई उखड़ी ध्वनि में धीरे-से कहा और भीगी आँखों से बच्ची की ओर देखने लगी।

"अवश्य ; किन्तु उत्तर न मिला तो फिर कभी न लिखूँगा।"

'काम बन जाये तो मुझे शीघ्र अपने पास बुलवाने का प्रबन्ध कीजियेगा।"

"बस चलता तो अभी अपने साथ ले चलता···!"

जमना की आँखों में भरे हुए आँसू गालों पर ढलक आये। उसने झट आँचल से उन्हें पोंछ डाला और झुककर पति के पाँव छू लिये। प्रकाश ने झुककर उसे दोनों हाथों से थाम लिया और बोला—

"नन्ही का नाम क्या सोचा है ?"

"जो आप कहिये।"

"मैं जो सोच बैठा हूँ ··वह तुम्हें पसन्द न आयेगा।"

"क्यों ?"

"मेरा मन कहता है।"

"शायद आपका मन ठीक न कह रहा हो···क्या सोचा है ?"

प्रकाश क्षण-भर चुप रहा और फिर पत्नी की उत्सुक दृष्टि को काटता हुआ बोला, "लक्ष्मी···"

लक्ष्मी का नाम सुनते ही न जाने क्यों वह झेंप गई। प्रकाश मुस्करा पड़ा और पालने में बेटी की ओर देखते हुए उसने जेब से मोतियों की एक माला निकाली और सिर पर हाथ फेरते हुए उसके गले में डाल दी। फिर मुड़कर पत्नी को गले से लगाया और तेजी से बाहर निकल गया। जमना यह सब देखती-की-देखती रह गई। उसके मन में कितनी ही बातें थीं जो वह उससे करना चाहती थी; किन्तु मन

की मन में ही रही। उसके अचानक यूँ चले जाने पर क्षण-भर तो उसे कुछ न सूझा और फिर उसने ज़ोर से पुकारा—

"रेशमाँ..."

प्रकाश ताँगे में सवार होकर चलने लगा तो उसने शीघ्रता से रेशमाँ को अपनी ओर आते देखा। प्रकाश ने ताँगा रोक लिया। रेशमाँ उसके पास आई और एक डिब्बा उसके हाथ में देते बोली—

"लीजिये..."

"यह क्या है ?"

"दीदी ने दिया है।"

प्रकाश ने डिब्बा खोलकर देखा। उसमें कुछ नकदी और गहने थे और एक छोटे-से कागज़ पर जमना के हाथ से लिखे यह शब्द थे— "शायद यह आपके कुछ काम आ सकें।"

प्रकाश ने एक दृष्टि उन गहनों पर डाली और दूसरी रेशमाँ पर। रेशमाँ की आँखों में आँसू तैर रहे थे। उसने कुछ सोचकर डिब्बा बन्द कर दिया और रेशमाँ को लौटाते हुए बोला—"दीदी से कहना अब इनकी आवश्यकता नहीं।" यह कहकर उसने रेशमाँ के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए ताँगे वाले को चलने को कहा। जब तक ताँगा आँखों से ओझल नहीं हो गया रेशमाँ वहीं खड़ी उसे देखती रही।

प्रकाश को कलकत्ता जाने के लिए पैसे की आवश्यकता थी; किंतु उसने जमना से यह नकदी और गहने लेना उचित न समझा। उस दिन की वार्तालाप से उसने पत्नी के मन की थाह को टोह लिया था।

रेशमाँ जब लौटी तो उसके मुँह से प्रकाश का उत्तर सुनकर उसके मन को आघात पहुँचा। उसने डिब्बा उसके हाथ से ले लिया और अपना लिखा हुआ पर्चा उँगलियों में मसलकर फूट-फूटकर रोने लगी। वह जानती थी कि उसके पति की सब पूँजी उसीके पास है और उसे

कलकत्ता जाकर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। उसे अपनी कही बातों पर खेद होने लगा और वह पछताने लगी; किन्तु अब क्या हो सकता था···वह उनसे क्षमा भी न माँग सकती थी।

चार दिन बाद प्रकाश का पत्र आया जिसमें केवल उसने अपने कुशलतापूर्वक पहुँचने की सूचना दी थी। इसके कुछ दिन बाद एक और पत्र आया जिसमें उसने लिखा था कि उसने एक मकान किराये पर ले लिया है; किन्तु इसमें काम-धंधे का कोई वर्णन न था। जमना उसके लिए बहुत चिन्तित थी। उसने स्वयं अपने हाथों से उसे दो-चार पत्र लिखे; किन्तु प्रकाश ने उनका कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया।

एक दिन किसी कार्यवश गुरूजी जमना के पिताजी से मिलने आये। जमना ने अकेले में अवसर पाकर उनसे प्रकाश के विषय में पूछा। उन्होंने बताया कि लगभग दो सप्ताह से उन्हें भी उसका कोई पत्र नहीं आया था। हाँ, उनके मित्र श्रद्धानन्दजी के पत्र द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ था कि उसने नौकरी करने से इन्कार कर दिया था और वह आजकल उनके यहाँ आता-जाता भी न था। उन्होंने जमना को यह भी बताया कि वह उसे एक जोरदार पत्र लिखकर आये हैं।

गुरूजी तो यह कहकर चले गये; किन्तु जमना का हृदय इस सूचना से डूबने लगा। उसके मुख पर एक रंग आता एक जाता। उसे एक अज्ञात खटका-सा घेरे रहने लगा। वह अपनी मनोदशा तो किसी पर प्रकट न कर सकती थी; किन्तु उसकी शक्ल-सूरत इस बात का प्रमाण थी कि भीतर-ही-भीतर कोई घुन उसे खाये जा रहा था। कई सोचें उसके मस्तिष्क में आतीं···शायद वह कलकत्ता में किसी कष्ट में पड़ गये हों और मन की दशा प्रकट न कर सकते हों। इतना बड़ा शहर और पैसे की तंगी न जाने उन पर अब क्या बीतती होगी··· जाते समय उन्होंने रुपये और गहने लेने से भी इन्कार कर दिया था··· कई अच्छे-बुरे विचार उसके मस्तिष्क में आकर उसे व्याकुल कर जाते।

एक रात सोये-सोये अचानक वह चीखकर उठ बैठी। रेशमाँ उसके निकट ही सो रही थी। दीदी की चीख सुनकर हड़बड़ाकर उठी और उसकी चारपाई पर आ बैठी। जमना घबराई हुई हाँप रही थी। रेशमाँ ने उसे सहारा दिया और यूँ घबराकर उठने का कारण पूछा। जमना फटी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बड़ी कठिनता से बोली कि उसने एक भयानक सपना देखा था···उसके जीजा कलकत्ता की गलियों में गिरते-पड़ते सिसक रहे थे और कोई उन्हें थामने वाला न था।

रेशमाँ की समझ में कुछ न आया ; किन्तु दीदी का भय दूर करने के लिए उसने कमरे में बत्ती जला दी। उसने देखा जमना का पूरा शरीर पसीने से लथपथ था। उसने पास रखे तौलिये से उसका पसीना पोंछा और सांत्वना देते हुए बोली—

"यह सपने भी कभी सच हुए हैं दीदी !"

"हाँ रेशमाँ ! तू नहीं समझती···यह अप्रत्यक्ष की आवाजें हैं जो स्वप्न द्वारा चेतावनी देती हैं······समय पर न समझो तो पछताना पड़ता है।"

"तो क्या करें···दीदी !"

"मुझे कलकत्ता जाना होगा।"

"दीदी ! कलकत्ता कोई गाँव नहीं···अकेली कैसे जाओगी ?"

"जब यात्रा करना ही ठहरा तो अकेले में क्या···घर का पता तो है ही।"

"इतने बड़े शहर में उन्हें ढूंढ़ोगी कैसे ?"

"जैसे भी होगा, ढूंढ़ लूंगी···तुम अधिक बातें न करो और मेरे जाने की तैयारी करो।"

"सवेरा तो होने दो—।"

"मुझे पहली गाड़ी से ही जाना है।

"और लक्ष्मी. ?"

"वह भी···जाओ धीरे-से माँ को जगा लाओ।"

रेशमाँ चली गई और जमना अपने सामान को सँभालने लगी··· यात्रा बहुत लम्बी थी और उसका मन घबरा रहा था···वह उड़कर उसके पास पहुँचने को अधीर हो रही थी।

जमना का निश्चय दृढ़ था, उसे कोई भी काट न सका ··माँ-बाप को विवशतः उसकी इच्छा के सामने झुकना पड़ा और वह अकेली नन्ही-सी लक्ष्मी को साथ लेकर इतनी लम्बी यात्रा पर रवाना हो गई। ठाकुर साहब ने प्रकाश को तार द्वारा आने की सूचना दे दी और गुरूजी से एक पत्र श्रद्धानन्दजी के नाम भी लिखवा दिया कि यदि प्रकाश अपने ठिकाने पर न मिले तो जमना उनके यहाँ पहुँच जाये।

दो दिन की निरन्तर यात्रा के बाद तीसरी दोपहर को जमना हावड़ा स्टेशन पर उतरी। प्लेटफ़ार्म पर उतरते ही उसने दूर तक दृष्टि दौड़ाई; किन्तु प्रकाश उसें कहीं दिखाई न दिया। उसे पूरा भरोसा था कि वह तार मिल जाने पर अवश्य उसे लेने गाड़ी पर आयेगा; किन्तु उसका वहाँ कोई चिन्ह भी न था। सामान को एक ओर प्लेटफ़ार्म पर रखकर वह वहाँ की भीड़ को देखने लगी। इससे पहले इतने व्यक्ति उसने एक साथ कभी न देखे थे। इतनी बड़ी भीड़ में अकेली खड़ी वह घबरा गई। उसने नन्ही लक्ष्मी को अपनी बाँहों में यूँ दबोच लिया जैसे उसके सिर पर कोई तूफ़ान मँडरा रहा हो। वह एक कोने में दुबकी खड़ी रही और फिर अपने सूटकेस पर जा बैठी। घबराहट और चिन्ता में वह भूल ही गई थी कि उसके सूटकेस में लगभग पन्द्रह-बीस हजार के गहने थे। अचानक वह इस विचार से घबरा गई कि यदि कोई इस बड़े शहर में उसे बहकाकर उसका यह सहारा भी छीन ले तो क्या हो?

वह प्लेटफ़ार्म पर अकेली बैठी न जाने क्या-क्या सोचती रही कि अचानक उसे अपने समीप एक छाया-सी दिखाई दी। वह घबरा गई और इस विचार से कि शायद वह उसका प्रकाश हो उसने गरदन उठाकर सामने देखा। एक कुली ध्यानपूर्वक उसे देख रहा था। जमना की

कंपकँपी देखकर वह बोला—

"कहाँ जाओगी ?"

"कलकत्ता।" जमना ने थरथराती आवाज़ में कहा।

"तो यहाँ क्यों बैठी हो—किसीने लेने आना है ?"

"हूँ..." उसके मुँह से निकला और उसने इधर-उधर प्लेटफ़ार्म पर देखा। गाड़ी के आने पर जो भीड़ वहाँ एकत्र हुई थी वह छँट गई थी, बस कहीं-कहीं कोई इक्का-दुक्का यात्री या कुली दिखाई दे रहा था। जिस रेलगाड़ी पर वह आई थी उसे इञ्जन प्लेटफ़ार्म से बाहर खींचे लिये जा रहा था। उसने वहाँ से दृष्टि हटाकर दोबारा कुली की ओर देखा। कुली फिर बोला—

"जिसने लेने आना था तुम्हें...वह तो अब न आयेगा।"

"क्यों ?"

"ट्रेन को आये तो एक घण्टा हो चुका, अब कोई क्या आयेगा...पता हो तो स्वयं उसके पास चली जाओ न।"

"सोचती हूँ...अब यही करना होगा।"

"तो सामान बाहर ले चलूँ ?" कुली ने एकाएक आगे बढ़ते हुए कहा।

जमना ने एक बार फिर उसको ध्यानपूर्वक देखा और सूटकेस छोड़ कर खड़ी हो गई। कुली ने सूटकेस और बिस्तर सिर पर उठा लिया और बाहर की ओर रवाना हुआ। जमना भी लक्ष्मी को छाती से चिपकाये उसके पीछे-पीछे चल दी।

बाहर आकर कुली ने टैक्सी के लिए आवाज़ लगाई तो जमना उसे रोकते हुए बोली—

"नहीं...घोड़ागाड़ी में जाऊँगी।"

"कहाँ जाना है ?"

"धरमतल्ला—"

"पहली बार आई हो कलकत्ता ?"

"नहीं तो···" वह घबराकर बोली, और फिर कहने लगी- -"स्त्री जात और फिर अकेली···"

"समझा···घबराओ नहीं···अभी प्रबन्ध किये देता हूँ।" कुली ने कहा और लपककर सामने घोड़ागाड़ियों के अड्डे पर चला गया। लोगों की भीड़ और दिन के उजाले को देखकर जमना का भय घट गया था। कुली शायद मुसलमान था और बातों से भलामानस लगता था। वह थोड़ी देर में घोड़ागाड़ी ले आया जिसका कोचवान कोई वृद्ध था। कुली ने सामान गाड़ी पर रखा और जमना से उसके ठिकाने का पूरा पता लेकर उसे समझा दिया, फिर किराया ठहराकर जमना को तसल्ली थर दी कि वह ठीक स्थान पर कुशलतापूर्वक पहुँचा देगा। जमना ने कुली की हथेली पर एक रुपया रखा और वह आशीर्वाद देता हुआ चला गया।

हावड़ा ब्रिज को पार करके गाड़ी शहर की ओर बढ़ी। चलते-चलते गाड़ी घनी आबादी में पहुँची। यूँ तो जमना ने कलकत्ता के विषय में बहुत-कुछ सुन रखा था; किन्तु आज स्वयं अपनी आँखों से बड़े-बड़े विशाल मकान और बाज़ार देखकर चकित रह गई। सहसा उसे विचार आया कि इतने बड़े शहर में यदि वह खो जाये तो···तो···यह सोचते ही वह काँप गई और उसने लक्ष्मी को सीने से चिपका लिया। फिर अपनी तसल्ली करने के लिए उसने एक दृष्टि सूटकेस पर डाली और उसे वहीं अपने पास देखकर उसको सांत्वना हुई।

कई सड़कें और गलियाँ पार करके घोड़ागाड़ी धरमतल्ला स्ट्रीट में पहुँची। बाज़ार के कोने पर 'धरमतल्ला' का लगा हुआ बोर्ड देखकर जमना के मुख पर चमक आ गई, मानो वह अपनी मंज़िल पर पहुँच गई हो। क्षण-भर के लिए कोचवान ने गाड़ी खड़ी की और जमना से एक बार फिर प्रकाश के मकान का पता पूछकर आगे बढ़ा। वह मकान आगे जाकर एक तंग गली में था। थोड़ी ही देर में गाड़ी उस मकान के सामने जा रुकी।

जमना ने नीचे उतरकर सामान सँभाला और मकान को देखने लगी। ऊपर जाती सीढ़ियों वाली दीवार पर जमी तख्ती पर कई नाम लिखे हुए थे। उसने उत्सुकतापूर्वक उन नामों को पढ़ना आरम्भ कर दिया और प्रकाश का नाम पढ़कर हर्ष से उसके मुख पर लालिमा की एक लकीर दौड़ गई। अपनी सांत्वना के लिए उसने सीड़ियों से उतरती एक स्त्री से भी पूछा और जब उसे विश्वास हो गया कि 'उसके देवता' वहीं रहते हैं, तो वह सामान उठवाकर ऊपर आ गई।

कमरा खुला था; किन्तु प्रकाश घर पर न था। दरवान ने थोड़ी पूछ-ताछ के बाद जमना को भीतर बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करने की अनुमति दे दी। जमना सूटकेस और बिस्तर को एक ओर जमा कर ध्यानपूर्वक कमरे का निरीक्षण करने लगी। वहाँ का रंग-ढंग इस बात का प्रमाण था कि वह प्रकाश का निवास-स्थान ही था। हर चीज़ बिखरी पड़ी थी। उसे यह देखकर बहुत दुःख हुआ और वह लक्ष्मी को पलंग पर डालकर कमरे को सँवारने लगी। उसने उल्टे-सीधे पड़े साज़ों को एक ओर ढंग से लगाया और झाड़ू लगाकर कूड़ा बाहर रखे टीन में डाल दिया। यूँ जान पड़ता था जैसे कई महीनों से कमरे की सफ़ाई न हुई हो। जमना की आँखों में अनायास आँसू भर आये···वह सोचने लगी कि भाग्य ने राज-महल में रहने वाले उसके स्वामी को इस गन्दी काल-कोठरी में ला फेंका था···

एकाएक लक्ष्मी के रोने की आवाज़ आई और वह चौंक गई। उसका दूध का समय हो गया था। जमना ने लपककर टोकरी में से दूध की बोतल निकाली और दरवान से दूध लाने के लिए कहकर द्वार की ओर जाने लगी कि अचानक दीवार में लगी अलमारी को देखकर उसके पाँव रुक गये। कुछ सोचकर उसने अलमारी को खोल डाला। पट खुलते ही उसे धक्का-सा लगा और वह स्तब्ध-सी वहीं खड़ी रह गई। तख्तों पर खाली शराब की बोतलों का ढेर लगा था।

लक्ष्मी दूध पीकर सो गई और जमना एक कोने में बैठकर पति के

लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। विखरा हुआ कमरा अव साफ़-सुथरा और सँवरा हुआ लग रहा था। शाम धीरे-धीरे रात में परिवर्तित होती जा रही थी और जमना अकेली वैठी सोचों में खोई फ़र्श पर उँगलियों से लकीरें डाले जा रही थी। कमरे में अँधेरा छा रहा था; किन्तु जमना ने जान-वूझकर वत्ती न जलाई। वाहर वाजार का शोर कमरे में सुनाई दे रहा था और गली के लैम्प से हल्की-सी रोशनी खिड़की द्वारा भीतर आ रही थी।

घटते-घटते वाज़ार का शोर भी समाप्त हो गया। वस किसी आती-जाती मोटर या ताँगे की आवाज़ सुनाई दे जाती। दुकानों की जग-मगाती वत्तियाँ बुझ गईं। कहीं-कहीं से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आ जाती। जमना की आँखें निरन्तर अंधेरे में भी किवाड़ पर लगी थीं और उसके कान प्रकाश के पाँव की जानी-पहचानी आहट सुनने के लिए व्याकुल थे।

सहसा सीढ़ियों से किसीके ऊपर चढ़ने की आवाज़ आई। जमना सिमट गई। उसका हृदय धक्-धक् होने लगा। सीढ़ियों से हटकर आवाज़ अव आँगन में आ गई थी। उसने पहचान लिया, यह ध्वनि उसके देवता के चरणों की ही थी।

उसका अनुमान ठीक ही था। अभी वह सँभल भी न पाई थी कि किवाड़ भीतर की ओर सरका। वह साँस रोककर एकटक उधर देखने लगी। लड़खड़ाते हुए पाँव से प्रकाश ने भीतर प्रवेश किया। जमना ने वाहर गली से आती हल्की रोशनी में उसे देखा और डर गई। उसकी लड़खड़ाती हुई टाँगें वता रही थीं कि वह नशे में था। जमना कमरे में उजाला करने के लिए उठना ही चाहती थी कि प्रकाश ने बढ़कर बिजली का बटन दबा दिया। जमना सिमटकर वहीं बैठ गई और प्रकाश को देखने लगी। वही मलमल का कुर्ता, वही धोती; किन्तु कलफ़ के स्थान पर अव वह पसीने से भीग रही थी। उसके वाल उलझ-कर माथे पर आ गये थे।

प्रकाश ने कोने में बैठी जमना को नहीं देखा और अपने ध्यान में लड़खड़ाता हुआ अलमारी के पास चला आया। क्षण-भर रुककर उसने ज़ोर से अलमारी के पट खोल दिये और ऊपर वाले खाने में रखी खाली शराब की एक बोतल को निकालकर उसने फिर वहीं रख दिया। इसके बाद उसका हाथ निचले खाने में गया जहाँ जमना ने नन्ही की दूध की बोतल और दूसरा सामान रख दिया था। उसने काँपते हाथों से उस बोतल को बाहर निकाला और घबराकर वहीं रख दिया। उसने सन्देह-मयी दृष्टि से कमरे में चारों ओर देखा और लक्ष्मी को पलंग पर सोया देखकर ठिठक गया और कुछ सोचकर बाहर जाने लगा। जमना ने उसे कमरे से बाहर जाते देखा तो एकाएक उसके मुँह से निकला—

"सुनिये !"

प्रकाश के पाँव रुक गये। जमना फ़र्श से उठ खड़ी हुई। प्रकाश ने बिना पीछे मुड़कर देखे हुए कहा—

"क्षमा कीजिये···मैं भूल से आपके घर चला आया।"

"मेरा घर···।" जमना उसके पास चली आई और बात कहते-कहते रुक गई। प्रकाश ने आधा मुँह उधर फेरा तो वह बोली, "यह घर तो आपका है।"

प्रकाश, जो पहले ही उसकी आवाज़ सुनकर आश्चर्य में था, ध्यान-पूर्वक मुड़कर जमना के चेहरे को देखते बोला···"तुम···कौन ?"

"मैं हूँ आपकी···जमना···और यह आपकी नन्ही लक्ष्मी···"जमना ने झट पलंग की ओर संकेत करते कहा। प्रकाश ने एक बार फिर सिर से पैर तक उसे देखा और फिर पलंग पर सोई बच्ची को देखते पूछने लगा—

"तुम यहाँ कब आईं ?"

"आज दोपहर की गाड़ी से···तार भी दिया था।"

"क्यों ?"

"आपसे मिलने···आपने पत्र लिखना जो बन्द कर दिया था।"

"ओह ! मैं समझा, मेरे मरने की सूचना सुनकर आई हो ?" प्रकाश ने नशे में झूमते हुए कहा।

"छी-छी ! आप यह कैसी बातें कर रहे हो ?" जमना ने यह कहते हुए बढ़कर उसके लड़खड़ाते हुए शरीर को थामा और उसे ले जाकर पलंग पर बिठा दिया। जमना के हाथों के छूने से उसके शरीर में बिजली की तरंग-सी दौड़ गई। उसने पत्नी की आँखों में चमकते हुए मोतियों को देखा और मुस्करा पड़ा। उसके आँसुओं की धारा तेज़ हो गई और वह दीवार के पास खड़ी होकर चुपके से रोने लगी।

थोड़ी देर तक कमरे में कोई आवाज़ न आई, फिर प्रकाश पलंग से उतरकर जमना के पास जा पहुँचा और उसके कंधों पर हाथ रखकर धीरे से पूछने लगा :—

"घर पर कुशल हैं ?"

"हूँ···।"

"बाबा कुछ कहते थे ?"

"काम न बना हो तो घर लौट जाओ।"

यह सुनते ही प्रकाश चुप हो गया। क्षण-भर बाद वह मुड़ा। द्वार पर जाकर दरबान को नीचे होटल से खाना लाने की आज्ञा दी। दरबान ने खाने के पैसे माँगे तो प्रकाश झेंप-सा गया और कुर्ते की जेब में से बटुआ निकाला और फिर जेब में रखते हुए बोला—"ले जाओ··· छुट्टा नहीं है···सवेरे दे देंगे।"

जमना ध्यानपूर्वक यह सब देख रही थी। दरबान के चले जाने के बाद प्रकाश कुर्ता उतारकर स्नानघर में चला गया। जमना ने अपनी शंका दूर करने के लिए उसके कुर्ते की जेब में से बटुआ निकालकर देखा। उसमें केवल थोड़ी-सी रेज़गारी थी।

इतने में दरबान खाना लेकर आया। जमना ने दाम पूछकर अपने पास से चुका दिए और चुपके से दस रुपये का एक नोट प्रकाश के बटुवे में डाल दिया। जब प्रकाश स्नान-गृह से बाहर निकला तो जमना खाना

परोसे बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। प्रकाश चुपचाप खाने के लिए आ बैठा और ग्रास मुँह में ले जाते हुए उसकी ओर देखते बोला—

"और तुम···"

"आप खा लें तब खा लूँगी।" जमना ने विनम्र उत्तर दिया।

"नहीं···आज तुम्हें मेरे साथ खाना होगा।"

"नहीं, आप खाइए पहले।"

"यह कलकत्ता है, सुजानगढ़ नहीं···यहाँ ऐसी बातें कोई नहीं सोचता···पत्नी और पति दोनों एक ही समान हैं··बराबर।"

"तो आप भी ऐसा समझते हैं?" उसने झुकी हुई आँखें उठाकर पूछा।

प्रकाश उसकी बातें सुनकर क्षण-भर के लिए चुप हो गया और फिर बोला, "मैंने तो यह कभी नहीं सोचा कि तुम मुझसे हीन हो।"

यह कहकर वह खाना खाने लगा। कुछ देर बाद जमना ने भी हाथ बढ़ाया और उसी थाल में से खाने लगी। दोनों खा रहे थे और दोनों मौन थे···प्रकाश इस विचार से कि कहीं जमना उसके विषय में कुरेदना न आरम्भ कर दे और जमना इस कारण से कि कहीं अधिक पूछताछ उसकी कलकत्ता की पहली रात को ही बेचैन न कर दे।

नौ

शीघ्र ही प्रकाश के जीवन पर पड़ा पर्दा उठने लगा। चार-छः दिन में ही जमना पर सत्य प्रगट हो गया। कलकत्ता आने के पश्चात् प्रकाश बिलकुल बेकार रहा था। न तो उसे कोई काम मिला, न ही उसने इस ओर कोई प्रयत्न ही किया। श्रद्धानन्दजी के प्रयत्न से उसे संगीत सिखाने की एक छोटी-सी नौकरी मिली; किन्तु दो दिन बाद ही वह उसे छोड़कर चला आया। किसीकी दासता और निश्चित समय पर पहुँचने का बन्धन उसके वश का रोग न था। जो कुछ थोड़ा धन वह लाया था, उसमें कुछ 'साज़' पर व्यय हो गया और कुछ जीवन की दूसरी आवश्यकताओं की भेंट हो गया। मकान का किराया, होटल का बिल और दूसरे कई ऋण सिर पर मँडरा रहे थे। हर साँझ मदिरा भी परम आवश्यक थी, जिसके बिना जीवन एक मौन वीणा की भाँति था।

यह सब ज्ञात होने पर जमना के हृदय पर गहरा आघात लगा। पर वह कर ही क्या सकती थी! धैर्य के सिवा उसके पास कोई चारा न था। कभी उसे प्रकाश के फुंकते हुए जीवन का······और कभी अपने यौवन का विचार आता। अबोध लक्ष्मी के विचार-मात्र से ही वह काँप उठती। उसने एक-आध बार सोचा कि यहाँ की सब दशा अपने पिता को लिख दे; किन्तु पति के सम्मान और पिता के दुःख का अनुमान लगाकर वह सत्य न लिख सकी। उसने झूठ ही माँ को लिख दिया कि काम बन गया है।

जमना ने प्रकाश के असम जीवन को सम करने में बहुत सहायता

की। उसने अपने पास से मकान का किराया, होटल का बिल, दरबान का वेतन···इत्यादि सब ऋणों का चुकता कर दिया। प्रतिदिन वह चुपके से कुछ रुपये प्रकाश के बटुवे में डाल देती, जिनसे उसे कलकत्ता जैसे बड़े शहर में जीने का सहारा मिल जाता, और अपना दुःख भुलाने के लिए हर शाम आधा बोतल शराब भी।

जमना जानती थी कि वह कभी अपने मुँह से उससे पैसे न माँगेगा, इसी कारण उसने यह मार्ग अपनाया था। वह उसके मन में अपने प्रति यह धारणा उत्पन्न न होने देना चाहती थीं कि वह इतनी स्वार्थी और संकीर्ण-हृदया है कि चार पैसे रखते हुए भी पति को भूखों मार सकती है। उसने उसकी जेब तो खाली न होने दी; किन्तु वह यह न समझ सकी कि यूँ करने से वह उसको और भी निकम्मा बना रही है। उसका काम करने का उत्साह और शक्ति धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही थी। वह या तो दिन-भर बैठा साज़ों के सुर बाँधता या फिर शराब के नशे में चूर बहकी-बहकी बातें करता।

जमना जब भी उसे आजीविका के लिए कोई नौकरी खोजने को कहती तो वह नशे में बौराया-सा उत्तर देता—

"पगली! जो राजदरबार में रह चुका हो वह भला अब क्या नौकरी करेगा···यह दुनिया वाले उसकी कला को क्या समझेंगे···अब तो एक ही उपाय है इसका···जमना!"

"क्या?" वह उसका उत्तर जानते हुए भी अनायास पूछ बैठती।

"मौत···" प्रकाश उसकी आँखों में झाँकते हुए मुस्कराकर उत्तर देता।

निशदिन यही बातें सुनकर जमना के कान पक गये। उसका प्यार और सहानुभूति धीरे-धीरे घटने लगी। उसका व्यवहार उसके प्रति कुछ कठोर होता गया। उसने अपना सब-कुछ न्यौछावर करके उसको बदलने का प्रयास किया था; किन्तु वह निष्फल रही, प्रकाश और भी बुराई की खाई में उतरता गया।

धीरे-धीरे जमना को स्वयं अपने-आपसे घृणा होने लगी। उस संगीत को जो उसे प्राणों से बढ़कर प्रिय था, अब सुनते ही वह अपने कानों को बन्द कर लेती। उसे मधुर तान यूँ लगती मानो कोई शोक का गाना उसके कानों में फूँक रहा हो।

अब आये दिन उनमें नोक-झोंक रहने लगी। वह व्यंग में कोई चुभती हुई ऐसी बात कर जाती जिससे प्रकाश बिगड़ जाता और कितनी ही देर तक दोनों आपस में खिचे-खिचे रहते। इसी दशा में तीन महीने बीत गये। जमना जितने रुपये साथ लाई थी वह तो शीघ्र ही समाप्त हो गये। अब गहने भी एक-एक करके बिकने लगे; किन्तु घर की दशा न सुधरी।

कहावत है, धन के तो कूए भी समाप्त हो जाते हैं। बिना किसी आय के निरन्तर व्यय से जमना के लाये हुए गहने कब तक बचते! एक वर्ष में ही प्रकाश के अनुचित व्यय के कारण पच्चीस हजार के गहने पेट की भट्टी में फुंक गये और जमना कुछ भी न कर सकी। मकान और होटल का ऋण अभी सिर पर था।

आज जमना को प्रकाश के पास कलकत्ता आये एक वर्ष बीत चुका था। प्रकाश कमरे में बैठा सितार ठीक कर रहा था और लक्ष्मी फर्श पर खेल रही थी। वह स्वयं गुसलघर में बैठी कपड़े धो रही थी। आज दो दिन से घर में खाना न बना था। घर में राशन का एक दाना भी न था और होटल वाले ने और उधार देने से इन्कार कर दिया था। मालिक-मकान ने भी किराया न मिलने पर घर से बाहर निकालने की धमकी दे रखी थी। जमना बिचारी के पास ले-देके केवल एक मंगल-सूत्र ही बचा था।

फ़र्श पर खेलते-खेलते अचानक लक्ष्मी का सिर पलंग के पैर से टकरा गया। सिर पर चोट लगने से वह चिल्ला पड़ी। प्रकाश ने सितार वहीं रखकर उसे गोद में उठा लिया और बहलाने लगा; किन्तु उसने रोना बन्द न किया। चोट लगने से माथे पर सूजन आ गई थी और वह

फूंक मारकर उसे सहलाने का प्रयत्न कर रहा था।

जमना ने लक्ष्मी के रोने की आवाज़ सुनी तो झट कपड़े वहीं छोड़ क्रोध से नाक सुकोड़ती बाहर आई और झट बच्ची को प्रकाश की गोद से उठा लिया। प्रकाश उसके क्रोध को देखकर झेंप गया। जब बहलाने से भी बच्ची चुप न हुई तो जमना खिन्न होकर उसे पीटने लगी। वह और भी ज़ोर से चिल्लाने लगी। प्रकाश से यह न देखा गया। उसने पास आकर रोती हुई बच्ची को उठा लिया और बोला—

"यह ठीक रहा······क्रोध हम पर और दण्ड इस अबोध बच्ची को।"

"और क्या करूँ···किसी पर बस भी तो नहीं···" वह भिन्नाते हुए बोली।

"बस क्यों नहीं···ऐसा ही क्रोध है तो दीवारों से सिर क्यों न फोड़ लो।"

"यह समय आया तो ऐसा भी कर लूंगी···सिर फोड़कर मर भी गई तो भी आपसे कुछ न कहूँगी।" वह बोली।

"और कह भी क्या सकती हो?"

"ठीक है···यदि कह सकती तो यह दिन देखने में न आते···ऐसे अनादर जीने से तो मर जाना भला।"

"तो मर जाओ···किसने रोका है?" प्रकाश ने क्रोध में उत्तर दिया।

जमना यह सुनकर झुंझलाती हुई गुसलघर में चली गई और प्रकाश लक्ष्मी को चुप कराने का प्रयत्न करने लगा; किन्तु वह किसी प्रकार भी उससे चुप न हुई। आखिर हारकर वह गुसलघर के पास आया और जमना को सम्बोधित करते हुए बोला—

"नन्ही का दूध कहाँ है?"

जमना कपड़ों को साबुन लगाकर मल रही थी। उसने पति की बात का कोई उत्तर न दिया और लकड़ी से कपड़े कूटने लगी। कुछ

रुककर प्रकाश ने फिर वही प्रश्न दोहराया। जमना ने बड़े क्षुब्ध मन से उसकी ओर देखा और बोली—

"दूध घर में नहीं।"

"तो सवेरे मँगवा लिया होता।"

"घर पर है ही क्या जो मँगवा लेती।"

"क्या ?" उसने काँपते हुए कहा।

"पैसे कहाँ हैं ?...आज दो दिन से दूध नहीं आया।"

"ऐसा भी क्या जो नन्ही के दूध के लिए भी दो-चार आने न हों।"

"होते तो क्या आपकी सिफ़ारिश चाहिये थी ?"

"जमना !" वह ऊँची ध्वनि में चिल्लाया और फिर रुकते हुए बोला—"तो क्या वह गहनों और हीरे-रत्नों का ढेर मेरे कफ़न के लिए रख छोड़ा है ?"

"उसका तो मैंने अपना कफ़न बनवा लिया है।" जमना चमककर बोली और कपड़े वहीं छोड़कर तेज़ी से उठी और अलमारी खोलकर गहनों का डिब्बा लाकर प्रकाश के सामने रख दिया। काँपते हुए हाथों प्रकाश ने डिब्बा खोला। उसमें उसके मंगलसूत्र और तीन ताँबे के पैसे के अतिरिक्त कुछ न था। प्रकाश ने आश्चर्यचकित उसको ओर देखा और चुप रह गया। वह उससे कुछ कहना चाहता था; किन्तु अपने में इतना बल न पा रहा था। उसको मौन खड़े देखकर वह बोली—

"मैंने आपसे झूठ कहा कि सब समाप्त हो चुका है...... अभी यह मंगलसूत्र और मैं हूँ...अपने पवित्र सुहाग के चिन्ह को तो जीवन में बिकते नहीं देख सकती...हाँ, यह शरीर आपके सामने है, यदि आपके किसी काम आ सके तो..."

"जमना..." वह फिर चिल्लाया।

"जमना मर चुकी...उसका अन्तस्तल मर चुका...देखिये, कलकत्ता बड़ा शहर है...सुना है, यहाँ जवान स्त्री अच्छे दामों बिक सकती है...

आप क्यों नहीं स्वयं अपने हाथों मेरी जवानी को कहीं मंडी में बेच देते...आपके जीवन की कुछ आवश्यकताएँ तो पूरी हो जायेंगी।"

पत्नी के मुख से यह शब्द सुनकर प्रकाश चकरा गया और क्रोध में आकर उसने उसके गालों पर एक थप्पड़ जड़ दिया। जमना सन्न होकर उसे देखती रह गई। प्रकाश झुंझलाता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

जमना सहम गई। अनायास उसकी आँखों से आँसू फूट पड़े और वह सिसकियाँ भरकर रोने लगी। पलंग पर पड़ी लक्ष्मी रो रही थी। प्रकाश क्रोध में भरा सीढ़ियाँ उतर गया।

सीढ़ियों से उतरकर वह गली से निकला और धरमतल्ला स्ट्रीट से गुज़रने लगा। उसे कुछ पता न था कि वह कहाँ जा रहा है। उसके मस्तिष्क पर एक भारी धूल-सी छाई हुई थी। लोगों की आवाज़ें, ट्रामों और मोटर-गाड़ियों का मिला-जुला शोर उसके कानों में एक भनभना-हट-सी छोड़े जा रहा था। वह बढ़े जा रहा था बिना किसी कारण, बिना किसी उद्देश्य के।

यहाँ से वह चौरंगी में आया और वहाँ से परेड ग्राउंड में आ निकला। उसका क्रोध अब घट गया था और गति पहले से धीमी पड़ गई थी; किन्तु जमना के कहे हुए शब्द अभी तक उसके कानों में गूंज रहे थे। उसने यह शब्द कहकर अपने मन की भड़ास निकाल ली थी; किन्तु इन शब्दों द्वारा वह उसे कितना अपमानित भी कर गई थी...उसकी दरिद्रता का भान करा गई थी। उसे अपना जीवन एक बोझ-सा अनुभव होने लगा।

चलते-चलते थककर वह सुस्ताने के लिए एक इमारत के बरामदे में बैठ गया। बाहर हरे घास के मैदान में कुछ बच्चे खेल रहे थे। खेलने वाले बालकों में एक नन्ही-सी लड़की भी थी। प्रकाश एकटक उसे देखने लगा। उसे यूँ लगा जैसे वह उसकी अपनी लक्ष्मी ही हो...किन्तु

वह तो अभी बहुत छोटी है, इतनी बड़ी कैसे हो गई···लक्ष्मी···उसकी नन्ही तो दो दिन से भूखी थी···उसे दूध भी नहीं मिला ··इसका उत्तर-दायित्व उसी पर है···यह विचार आते ही वह तिलमिला उठा और अनजाने उठकर आगे बढ़ने लगा। सहसा उसका पाँव किसी चीज से टकरा गया। उसने रुककर देखा। घास में शराब की एक खाली बोतल लुढ़क रही थी। शायद रात के एकांत में किसी दुःख के मारे ने दुःख दूर करने के लिए इस बोतल को ठोकर मारकर आगे लुढ़का दिया। एक खन की आवाज़ आई और उसे यूँ अनुभव हुआ जैसे उसका अपना जीवन भी इस खाली बोतल के समान था जो एक असम मार्ग पर लुढ़कता फिर रहा था।

श्रद्धानन्दजी उसके मकान से कोई छः मील की दूरी पर रहते थे। प्रकाश अपने विचारों में खोया पैदल चलता हुआ उनके आश्रम में चला आया। वे उस समय साधना में तल्लीन थे। प्रकाश चुपके से उनके पास जाकर बैठ गया और प्रतीक्षा करने लगा। लगभग आध घंटे के बाद श्रद्धानन्दजी ने आँखें खोलीं। प्रकाश ने उनके चरण छूकर आशीर्वाद लिया। इधर-उधर की बातें होने लगीं। प्रकाश ने अपनी दशा वर्णन करते हुए उनसे किसी काम-काज की प्रार्थना की। उसने उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया कि वह कोई भी कार्य करने को तैयार है।

श्रद्धानन्दजी ने ध्यानपूर्वक उसको निहारा। वह अनुमान लगाना चाहते थे कि क्या वह सच कह रहा था। उसके मुख पर प्रगट मनोभाव से उन्हें विश्वास हो गया कि उसका राजदरबार का नशा उतर चुका था और वास्तव में सीधे रास्ते पर चलना चाहता था। उन्हें उसको इस दशा में देखकर प्रसन्नता ही हुई। वह जानते थे कि कलाकार के उत्कर्ष का रहस्य उसकी 'गिरावट' में ही था···वह डूबकर ही उभरता है। पहले जो नौकरी उन्होंने उसके लिए निश्चित की थी वह तो जा चुकी थी और नये काम का प्रबन्ध करने के लिए समय की आवश्यकता

थी ; किन्तु फिर भी तुरन्त सहायता के लिए उन्होंने प्रकाश को एक पत्र आल इण्डिया रेडियो के प्रोग्राम-डायरेक्टर के नाम लिख दिया।

प्रकाश जब प्रोग्राम-डायरेक्टर से मिला तो उसने श्रद्धानन्दजी का पत्र देखते ही उसे प्रोग्राम के लिए रिकार्डिंग-रूम में भिजवा दिया। यह वह समय था जब देश-भर में नये-नये रेडियो-स्टेशन खोले जा रहे थे और नये कलाकारों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें प्रोग्राम दिये जा रहे थे। जो भी आता, उसे प्रोग्राम में भाग मिल जाता और प्रकाश का तो कहना ही क्या, वह एक मँजा हुआ गायक था।

उसका स्वर परखा गया और उसे अपनी आवाज़ रिकार्ड कराने की अनुमति मिल गई। रिकार्डर ने पूछा—

"कौनसा राग गायेंगे ?"

"ठुमरी।" प्रकाश ने उत्तर दिया।

"उसके बोल ?"

"वह भी अपने होंगे···आप रिकार्डिंग की तैयारी कीजिये।" प्रकाश ने पूरे विश्वास से कहा और गाने के लिए तैयार हो गया।

वैसे भी मन दुखी था और यूँ भी उसके स्वर में दर्द एक प्राकृतिक देन थी, जब गाना आरम्भ किया तो समाँ बंध गया। बोल थे—

"दुःख के दिन अब बीतत नाहीं।" दुःख·········

साज़िन्दों ने जो स्वर इस गाने के लिए ठीक किया था वह प्रकाश को पसन्द न आया। उसने उस्ताद को रोककर स्वयं अपनी लय पर उनके साज़ मिलाये और वह चीज़ गाई कि डायरेक्टर तक ने उसे बधाई दी।

रेडियो-स्टेशन के गाना सुनने वाले अधिकारियों ने उसकी प्रशंसा के पुल बाँध दिये; किन्तु प्रकाश के लिए यह सब व्यर्थ था। उसके मस्तिष्क में केवल एक बात थी···इस गाने के लिए उसे क्या मिलेगा···बिलखती हुई लक्ष्मी का मुख उसके सामने था···दो दिन से उसके लिए दूध नहीं आया था···दो दिन से···नन्ही लक्ष्मी···उसके लिए दूध का प्रबन्ध

करना था। वह यह सोच रहा था कि ख़ज़ांची ने उसके हाथ में दस रुपये का नोट थमा दिया। प्रकाश ने एक दृष्टि उस नोट पर और दूसरी प्रोग्राम-डायरेक्टर पर डाली जो ध्यानपूर्वक उसे देखते हुए यह जाँचने का प्रयास कर रहा था कि कलाकार ने इससे पहले भी जीवन में ऐसा नोट देखा है? प्रकाश ने मुस्कराते हुए नोट को लपेटकर जेब में डाल लिया और बोला—

"शुक्रिया।"

यह सुनकर वह बाहर जाने लगा कि डायरेक्टर की आवाज़ सुनकर रुक गया। वह कह रहा था—

"तो आप चल दिये? देखिये..."

प्रकाश ने गरदन फेरकर उधर देखा। डायरेक्टर कुर्सी छोड़कर उसके पास गया और विनम्र बोला—

"अगले प्रोग्राम के लिए कब आइएगा?"

प्रकाश क्षण-भर चुप रहा और फिर होंठों पर हल्की मुस्कराहट लाते हुए बोला—

"जब नसीब ले आये।"

यह कहकर वह तेज़ी से बाहर निकल गया और डायरेक्टर उसे देखता ही रह गया। वह इस कलाकार के भाव को शायद अब तक न समझ सका था...उसकी आवश्यकता को न समझ सका था।

जब वह घर लौटा तो अँधेरा हो चुका था। उनके कमरे में बत्ती अभी न जली थी। सीढ़ियाँ चढ़कर वह चुपचाप कमरे में आया और बिजली का बटन दबाकर उजाला कर दिया। जमना फ़र्श पर बैठी शायद उसीके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। लक्ष्मी उसकी गोद में चुपचाप लेटी हुई थी। जूतों की आहट सुनकर लक्ष्मी ने सिर हिलाया और प्रकाश को खड़ा देखकर बाँहें फैलाकर बिलखने लगी। प्रकाश ने झट हाथ बढ़ाकर उसे उठा लिया और सीने से लगाकर प्यार करने लगा। फिर उसने जेब से दस रुपये का नोट निकाला और नन्ही के हाथ

में देते हुए उसे फ़र्श पर खड़ा करते बोला—

"जा···माँ को दे दे···आज घर पर खाने को कुछ नहीं न······मँगवा ले।"

लक्ष्मी कोमल उँगलियों में नोट को थामे हुए प्रकाश की सहायता से चलकर माँ के पास आ खड़ी हुई और हाथ बढ़ाकर नोट उसकी ओर बढ़ाने लगी। जमना ने हाथ से उसे परे धकेल दिया और मुँह मोड़कर बैठी रही। लक्ष्मी फिर रोने लगी। प्रकाश ने बढ़कर फिर उसे गोद में उठा लिया और उसे बहलाते हुए बोला—

"तेरी माँ का मिज़ाज शायद अभी ठण्डा नहीं हुआ···चल, हमीं बाजार से ले आयें।"

थोड़ी देर में प्रकाश होटल से खाना और नन्ही का दूध ले आया। आज पहली बार उसकी शाम बिना पिये ही रह गई। वह आते हुए इन दस रुपयों में बड़ी सुगमता से दो-एक पैग चढ़ाकर आ सकता था; किन्तु न जाने क्यों आज उसका मन स्वयं ग्लानि करने लगा और बिना नशे के घर चला आया।

जमना अभी तक फ़र्श पर निढाल-सी बैठी थी। प्रकाश ने खाना तिपाई पर रख दिया और स्वयं नन्ही के दूध की बोतल धोकर उसमें उँडेलने लगा। जमना चुपचाप उसे यह सब करते हुए देखती रही; किन्तु अपने स्थान से हिली नहीं। लक्ष्मी को बिस्तर पर लिटाकर प्रकाश ने दूध की बोतल उसके मुँह से लगा दी और खाने के लिए उसने फ़र्श पर ही चटाई बिछाकर चौकियाँ लगा दीं। जमना बिना हिले-डुले मौन उसे देखती रही।

लक्ष्मी दूध पीते-पीते सो गई थी। प्रकाश ने दूध की बोतल उसके मुँह से हटा दी और फिर खाने पर बैठते हुए जमना को सम्बोधित करते बोला—

"जमना! आओ···"

जमना चुप रही और क्रोध में भरी सुबकने लगी। प्रकाश

ने लपककर उसका आँचल थाम लिया और बोला—

"थूक दो न अब यह गुस्सा·· आओ, खाना खा लें।"

"मुझे नहीं खाना···" उसने झटका देकर अपना आँचल छुड़ा लिया।

प्रकाश उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसे हाथ से रोकते हुए बोला—

"रुष्ट हो न मुझसे···भूल से क्रोध में मेरा हाथ उठ गया।"

"भूल कैसी, यह तो पुरुषों का अधिकार है···जब चाहें स्त्रियों को धुत्कार सकते हैं।"

"जमना···" उसने थरथराती आवाज़ में उसे पुकारा।

जमना चुप रही और बाहर जाने लगी। प्रकाश ने उसके कंधों पर दोनों हाथ रखते हुए कहा—

"शायद तुम नहीं जानतीं कि तुमने आज मुझ पर कितना बड़ा उपकार किया है···तुमने मेरे सोये हुए अन्तस्तल को झँझोड़कर जगा दिया है···तुम्हारा प्रकाश आज आल इण्डिया रेडियो पर अपनी पहली ठुमरी रिकार्ड करवाकर आ रहा है।"

वह फिर भी मौन रही। प्रकाश ने पुतलियों में चमक लाते हुए कहा, "उसे आज गाने के उपलक्ष में मोती और रत्न नहीं मिले बल्कि एक दस रुपये का नोट मिला है···कितनी बड़ी कृपा है मालिक की!

जमना ने आँखें उठाकर सरसरी दृष्टि से पति की ओर देखा और मुँह में आँचल ठूँसकर सिसकियाँ भरती हुई बिस्तर पर जा गिरी। शायद उसकी यह बात उस मानसिक चोट की पूर्ति न करती थी जो उसके थप्पड़ ने उत्पन्न की थी और सवेरे से इस चोट को याद करके रो रही थी। प्रकाश के निरन्तर मनाने पर भी जब उसका रोना बन्द न हुआ तो वह विवश होकर चारपाई के एक कोने पर बैठ गया। फिर न जाने उसके मन में क्या विचार आया कि उसने होटल से लाया हुआ सब खाना अखबार के कागज़ में लपेटा और खिड़की द्वारा नीचे गली

में फेंक दिया ।

जमना ने उसे खाना फेंकते हुए देखा ; किन्तु उसने उसे रोका नहीं। प्रकाश ने कमरे की वत्ती बुझा दी और फ़र्श पर विछी चटाई पर लेट गया। दोनों लेटे हुए अपने-अपने दुःख का विश्लेषण कर रहे थे… दोनों के मन वेचैन थे…दोनों की आत्माएँ दुखी थीं।

कमरे के मौन में दोनों एक-दूसरे के हृदय की धड़कनें सुन रहे थे। दोनों की आँखों में नींद न थी। जमना के मन में आया कि उठकर पति के चरणों में जा गिरे; किन्तु सुवह का लगा हुआ थप्पड़ उसे रोक रहा था। मन वड़े विचित्र असमंजस में था। वाज़ार में नीचे पनवाड़ी की दुकान में रेडियो वज रहा था जिसकी आवाज़ दोनों के कानों में पड़ रही थी। अचानक प्रोग्राम में प्रकाश के गाने की आवाज़ सुनाई देने लगी। यह वह ठुमरी थी जो कुछ समय पहले वह रिकार्ड करवाकर आया था। जमना ध्यानपूर्वक वह आवाज़ सुनने लगी—

"दुख के दिन अब वीतत नाँहीं"

प्रकाश भी एकाग्र हुआ उसी गाने को सुन रहा था। आज जीवन में प्रथम वार उसने अपनी ध्वनि को रिकार्ड हुए सुना था। उसने अनुभव किया कि जो ठुमरी उसने गाई है वह वास्तव में सत्य है…उसीके जीवन की झलकी है…यह फीका निराशामय वातावरण…उदासीन हृदय, चिन्ता से भरपूर दिन-रात…एक अटूट अँधेरी रात ही तो है उनके जीवन जिसमें से सुख की क्षणिक किरणें निकल चुकी हैं।

जमना के कान भी अपने पति की दुखभरी आवाज़ पर लगे हुए थे जिनमें उसके मन की व्यथा छिपी हुई थी। अनायास फिर उसकी आँखों में आँसुओं की झड़ी लग गई और वह पलंग से उठकर उसके पास जा बैठी। प्रकाश चौंककर अभी सँभल भी न पाया था कि वह उसके शरीर से लिपट गई। उसकी आँखों से छमाछम आँसू वरसे ही जा रहे थे। प्रकाश ने उसे आलिंगन में ले लिया। उसने उसके आँसुओं को रोकने का कोई प्रयास न किया। वह जानता था कि उसके हृदय में जो

क्षणिक खिचाव-सा उत्पन्न हो गया था वह इसी नीर द्वारा धुल जायेगा।

वह वड़ी देर तक रोती रही और प्रकाश उसे सीने से चिपकाये रहा। न जाने कव स्वयं ही यह झरने सूख गये और वहीं प्रकाश के सीने पर सिर रखे उसकी आँख लग गई। किन्तु प्रकाश की अपनी आँखों में नींद न थी। वह अन्धेरी और मौन रात में विना करवट लिये लेटा उसके मन की धड़कन सुनता रहा जिससे उसे अव शान्ति का भान हो रहा था।

दो दिन बाद सवेरे प्रकाश बाहर जाने की तैयारी कर रहा था कि किसीने द्वार खटखटाया। जमना उस समय उसके कुर्ते पर वटन टाँक रही थी। प्रकाश ने झट उसके हाथ से कुर्ता खींचा और पहनते हुए आकर द्वार खोला। वह आश्चर्य में था कि इस समय कौन आया होगा। बाहर अधेड़ आयु का एक अप-टू-डेट व्यक्ति खड़ा उसका नाम पूछ रहा था। प्रकाश ने अपना परिचय कराया। आने वाले व्यक्ति ने मुस्कराते हुए हाथ वढ़ाया और वोला—

"मिस्टर प्रकाश! मैं हूँ...सरकार...कलकत्ता के मॉडर्न थियेटर का मालिक।"

"आप मुझसे..." प्रकाश ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा।

"हाँ,...मैं आप ही से मिलने आया हूँ...बड़ी कठिनता से आपका मकान खोजा है...पता तो रेडियो-स्टेशन से मिल गया था।" सरकार ने प्रकाश की बात वीच में ही काटते हुए उत्तर दिया।

"ओह...आइये...वाहर क्यों खड़े हैं?"

प्रकाश ने भीतर मुड़कर जमना को पर्दे में चले जाने का संकेत किया और सरकार को कमरे में ले आया। कुर्सी पर बैठते ही मिस्टर सरकार ने प्रश्न किया—

"दुख के दिन अब बीतत नाहीं...रेडियो पर यह गीत आप ही ने गाया था?"

"जी...; किन्तु, गीत नहीं...ठुमरी कहिये।"

"ओह...सॉरी...मेरा मतलब उसी गाने से था...सुना है, इसकी धुन भी आप ही की अपनी है।"

"जी..."

"आपने कभी इससे पहले भी धुनें बनाई हैं ?"

"जी हाँ...कई; ...किन्तु, रिकार्डिंग पहली ही धुन की है।"

"तो पहले आप कहाँ थे...मेरा मतलब किसी थिएट्रीकल या फ़िल्म कम्पनी में ?"

"किसीमें नहीं..."

"तब...?"

"यह मेरा शौक है...धन्धा नहीं।"

"समझा...तो क्या आप शौक को धन्धा बनाना चाहते हैं ?"

"मैं समझा नहीं।"

"आप मेरी फ़िल्म कम्पनी में काम करना चाहें तो मेरे पास एक अच्छी नौकरी ख़ाली है।"

नौकरी का शब्द सुनकर प्रकाश के मन में एक नश्तर-सा चुभा; किन्तु इस समय विवशताओं के ग्रह में आये हुए वह चुप रहा और प्रश्नसूचक दृष्टि से प्रकाश की ओर देखने लगा। उसे चुप देखकर सरकार झट बोला—

"चाहिये तो दो साल का कण्ट्रैक्ट कर लीजिये।"

"मुझे क्या करना होगा ?"

"मेरी फ़िल्मों की TUNES बनानी होंगी...धुनें।"

"और क्या मिलेगा मुझे ?"

"एक सौ दस रुपया महीना और दोपहर का खाना स्टुडियो में।"

"मुझे स्वीकार है।" प्रकाश ने बिना सोचे कह दिया।

"और कण्ट्रैक्ट दो वर्ष का होगा।"

"जैसे आप उचित समझें।"

सरकार की आँखों में चमक आ गई। उसने झट जेब से एक कार्ड

निकालकर प्रकाश को देते हुए कहा—

"इस पते पर आप कल सुबह दस बजे पहुँच जायें···सब काम तैयार होगा···और महीने की तनख़ाह भी पहले मिल जायेगी ।"

सरकार ने प्रकाश से हाथ मिलाया और नीचे उतर गया । प्रकाश खड़ा इस व्यक्ति के विषय में कुछ सोचता रहा और जब वह चला गया तो उसने खिड़की में से नीचे झाँककर देखा । सरकार एक नई सुन्दर गाड़ी में सवार हो रहा था । जमना भी पर्दे से निकल आई थी और जब मोटर-गाड़ी चली गई तो उसने प्रकाश से पूछा—

"कौन था ?"

"किसी फ़िल्म कम्पनी का मालिक था···नौकरी देने आया था फ़िल्मी धुनें बनाने की ।"

"तो आपने स्वीकार कर ली ?"

"और क्या करता···द्वार-द्वार भटकने से तो अच्छा है कि एक ही स्थान पर भटक लें···कल बुलाया है ।"

"किन्तु, यह सब हुआ कैसे ?"

"हमारे दुख की पुकार सुनकर···रेडियो पर मेरी आवाज़ सुनी और वहीं से पता पूछकर चला आया ।"

"आप फ़िल्मी धुनें बना लेंगे क्या ?"

"क्यों ··इसमें···"

"नहीं···मेरा अर्थ था···आपने पहले कभी यह काम किया नहीं ।" जमना ने रुकते-रुकते कहा ।

"अब कर लूंगा···मूर्ख है, गीत और ठुमरी में अन्तर नहीं कर सकता ।" प्रकाश ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया और अपने साज़ों के पास जा बैठा । आज कई दिन से उसने साज़ों को हाथ नहीं लगाया था··· उनसे बात नहीं की थी । चाहें साज़ निर्जीव सही; किन्तु उसके मन की पीड़ा से अवश्य परिचित थे···वह न केवल हृदय की धड़कन सुनते ही हैं, बल्कि उससे ताल मिलाकर धड़कते भी हैं···उसके निःश्वासों के संग

सिसकते भी हैं···यही इनकी प्रकृति है। प्रकाश ने सितार उठाया और एक धुन छेड़ दी। जमना उसके निकट आ बैठी और बोली—

"आपको तो वाहर जाना था।"

"था···अब नहीं।" प्रकाश ने तार हिलाते हुए कहा।

"क्यों ?"

"जिसे खोजने जाना था वह स्वयं द्वार पर जो आ गई।" प्रकाश ने स्वर थोड़ा धीमा करते हुए मुस्कराकर जमना की ओर देखा।

"कौन ?" जमना ने वनते हुए पूछा।

"नौकरी।" प्रकाश ने होंठों को दवाते हुए उत्तर दिया। सितार के तारों की मधुर झनझनाहट से कमरा गूंज उठा।

जमना मुस्करा पड़ी और उठकर काम करने चली गई। आज उसका हृदय प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो रहा था। वह सोचने लगी, आखिर भगवान् सवकी सुनता है···उसने मन-ही-मन पहले वेतन में से भगवान् के मन्दिर में प्रसाद देने की धारणा कर ली।

दूसरे दिन जव प्रकाश घर लौटा तो जमना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। आज उसने कमरे को नये ढंग से सजा रखा था और नई साड़ी पहन ली थी। लक्ष्मी को भी उसने सुन्दर फ्रॉक पहना दिया था। उसका विचार आज प्रकाश के संग मन्दिर जाने का था। प्रकाश के प्रवेश करते ही उसका मुख प्रफुल्लित हो उठा। उसने उसके थके हुए शरीर को सहारा देते हुए तौलिये से उसके माथे पर आया पसीना पोंछा। प्रकाश ने मुस्कराकर लक्ष्मी को गोद में उठा लिया और जेब में से दस-दस रुपए के दस नोट निकालकर जमना की हथेली पर रख दिये। एक दस रुपये का नोट उसने अपने खर्चे के लिए रख लिया।

जमना ने मन्दिर जाने की इच्छा प्रगट करते हुए उसे भी संग चलने की प्रार्थना की; किन्तु प्रकाश ने थकावट का वहाना बनाकर इंकार कर दिया। जमना ने अधिक आग्रह न किया और स्वयं लक्ष्मी

को गोद में उठाकर पास ही गली के नुक्कड़ पर मन्दिर में चली गई।

जब प्रसाद चढ़ाकर वह मन्दिर से लौटी तो प्रकाश बैठा शराब पी रहा था। उसके पाँव की आहट होते ही प्रकाश ने झट बोतल तकिये के नीचे छिपा दी। जमना ने उसकी यह चोरी देख ली; किन्तु उस पर स्पष्ट न होने दिया। प्रकाश उसे आते देखकर मुस्करा पड़ा और प्रसाद लेने के लिए दोनों हाथ बढ़ा दिये। जमना ने अपना हाथ पीछे हटा लिया और बोली—

"बुरा न मानो तो प्रसाद लेने से पहले कुल्ली कर लो।"

"ओह ! लो, अभी मुँह पवित्र किये लेता हूँ।" प्रकाश ने लपककर पानी की लुटिया उठा ली और आँगन में कुल्ली करने चला गया। प्रसाद देते हुए जमना ने गम्भीरता से उसकी ओर देखा। प्रकाश के मन का चोर और अधिक छिपा न रह सका। वह स्वयं ही होंठों पर फीकी मुस्कान लाते हुए बोला—

"वास्तव में जमना ! मैं बहुत थक गया था···दो घूँट कहीं बोतल में बची रखी थी सोचा, ले लूँ, थकान दूर हो जायेगी।"

"अच्छा किया आपने।" जमना बोली और फिर क्षण-भर रुककर कहने लगी—"देखिये···"

प्रकाश मुँह की ओर प्रसाद वाला हाथ ले जाते हुए रुक गया और जमना की दृष्टि को काटते हुए उसके समीप आ गया।

"आप पीना छोड़ दें···यह तो शायद सम्भव नहीं···, किन्तु एक बात तो छोड़ सकते हैं ?" जमना ने उससे आँखें मिलाते हुए कहा—"

"क्या ?" उसने झट पूछा।

"चोरी से पीना···देखिये, तकिये के नीचे रखी बोतल कहीं पलट न जाये···आपको पीना है तो जी-भरकर सामने पीजिये···मैं आपके लिए कुछ नमकीन का प्रबन्ध करती हूँ।"

जमना के मुँह से यह बात सुनकर प्रकाश झेंप गया और जब वह बाहर निकल गई तो उसने काँपते हाथों से तकिये के पीछे रखी बोतल को निकाला और गिलास में उँड़ेलने लगा। जमना क्या कह गई थी··· इस बात पर वह स्वयं एकाएक मुस्करा पड़ा। वह मुस्कराते हुए पी रहा था और जमना पर्दे की ओट से छिपकर देख रही थी।

दस

दिन बीतते गये और प्रकाश संसार की सुध-बुध खोकर मॉडर्न-थियेटर के लिए एकसौ दस रुपये महीना पर नित-नई धुनें बनाता रहा। उसने दो वर्ष का काण्ट्रैक्ट तो कर लिया था; किन्तु वह यह न समझ सका कि वह यह काम दूसरों के लिए कर रहा था। किसी फ़िल्म अथवा रिकार्ड में उसका नाम न दिया जाता बल्कि उसके परिश्रम का श्रेय मॉडर्न आरकैस्ट्रा के मुख्य मिस्टर मुकर्जी को मिलता।

प्रकाश की बनाई हुई धुनें देश-भर में गूँजने लगीं; किन्तु उसके नाम से कोई परिचित नहीं था। केवल मॉडर्न थियेटर के कर्मचारी ही यह रहस्य जानते थे कि उनकी फ़िल्मों की सफलता में सबसे बड़ा हाथ प्रकाश का ही था। लोग उसकी धुनों के दीवाने थे। इस बीच में प्रकाश की भेंट देश के प्रसिद्ध और स्वर्ण-स्वर गायक कुन्दन से हो गई जिससे लय, ताल और सुर में और कोई होड़ न ले सकता था। महान कवियों की ग़ज़लों को वह इस ढंग से गाता, उनमें स्वर का वह रंग भरता कि सुनने वाले चकित रह जाते!

इन दोनों का मिलन मानो सोने और सुहागे का मिलन था; कुन्दन की आवाज़, उसका साज़ और प्रकाश की धुनें···जो गाने अब तक संगीत-सभाओं तक ही सीमित थे, जिन्हें केवल संगीत-विशेषज्ञ ही समझ सकते थे, उन्हें प्रकाश ने अछूती धुनें देकर लोकप्रिय कर दिया था। प्रकाश का परिश्रम सबके लिए लाभदायक था। मिस्टर मुकर्जी का नाम फ़िल्म-जगत् में चमकने लगा, मॉडर्न थियेटर के मालिक

मिस्टर सरकार की तिजोरियाँ भरने लगीं, कुन्दन और अन्य कई गायक देश-भर में प्रसिद्ध हो गये ; किन्तु स्वयं प्रकाश का मूल्य वही एकसौ दस रुपये मासिक रहा। कम्पनी ने उसके वेतन में पाँच रुपये की बढ़ोतरी भी न की इसलिए कि उसका इतना ही कण्ट्रेक्ट हो चुका था···यह व्यापार था और व्यापार में भावना का कोई स्थान नहीं।

प्रकाश इस ओर विलकुल असावधान था और यह वास्तव में उसकी एक वड़ी भूल थी। यह सच है कि राजगायक वन चुके रहने के पश्चात् उसे और ख्याति की कोई चाह न थी ; किन्तु वह यह न सोच सका कि यूँ न करके वह अपने भविष्य को हानि पहुँचा रहा था। इस वात का अनुभव उसे बड़ी देर में हुआ। थियेटर के हीरो राज और गायक कुन्दन ने मित्रता के नाते उसे आग्रह किया कि वह मिस्टर सरकार से अपना अधिकार माँगे। यदि उसका नाम केवल पर्दे के पीछे छिपा उसकी कला दूसरों को ही उछालती रही तो संसार प्रकाश के व्यक्तित्व को क्या जानेगा।

इन्हीं दिनों कम्पनी के हीरो राज को बम्वई की एक प्रसिद्ध फ़िल्म कम्पनी बम्वई मूवीटोन ने अच्छे वेतन पर हीरो ले लिया। मिस्टर सरकार ने उसे रोकने का बड़ा प्रयत्न किया ; किन्तु राज पर बम्बई का नशा छाया हुआ था और वह वहाँ की फ़िल्म कम्पनियों में काम करके अधिक ख्याति और पैसा कमाने की आशा में था। उसकी विदाई में प्रकाश भी उपस्थित था। पार्टी आरम्भ होने से पूर्व प्रकाश की धुन पर कुन्दन ने एक गीत गाया। सभा में फ़िल्म-जगत् के बड़े-बड़े व्यक्ति और शहर के अन्य महान् लोग आमन्त्रित थे। वोतलों-पर-वोतलें खुल रही थीं और पीने वाले उन्माद में आकर झूम रहे थे। कुन्दन प्रकाश के साथ बैठा गा रहा था—

पीये जा···और पीये जा
जिन्दगी का ग़म उठाये तेरी वला
अरे···देखता है क्या···पीये जा···
आकवत की बातें जाने कोई क्या···"

प्याले झूम रहे थे, पियक्कड़ झूम रहे थे, संसार झूम रहा था और कुन्दन गाये जा रहा था। सहसा राज ने बोतल में से अपने गिलास में एक पैग उलटते हुए प्रकाश को सम्बोधन किया—

"प्रकाश···!"

"हूँ···" नशे में चूर प्रकाश ने धीरे-से आँखें खोलीं।

"एक बात मानोगे मेरी ?"

"क्यों नहीं ?"

"मॉडर्न थियेटर से तुम्हारा कण्ट्रैक्ट कब तक है ?"

"अब सात महीने बाकी हैं।"

"इसके बाद मिस्टर सरकार तुमसे पाँच साल का और कण्ट्रैक्ट करने की सोच रहे हैं···ज्यादा पैसों पर।"

"तब···?" प्रकाश ने पूछा।

"वह तुम्हें हरे-बाग़ दिखायें तुम उनके फेर में मत आना।"

"क्यों ?"

"इसीमें तुम्हारी भलाई है······मैं तुम्हें यहाँ से बम्बई ले जाना चाहता हूँ।"

"वहाँ क्या होगा ? आसमान से गिरे तो खजूर में जा अटकेंगे।" प्रकाश ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"नहीं···यह सब मुझ पर छोड़ दो।"

"जैसा तुम बेहतर समझो।"

"तो वादा रहा।"

"हाँ···" प्रकाश ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और प्रकाश ने उसका हाथ दबाते हुए अपना गिलास प्रकाश के गिलास से टकराकर कंठ में उँडेल लिया। कुन्दन अपनी लग्न में गाये जा रहा था—

पीये जा···और पिये जा
बोतल उठा, काक उड़ा···पिये जा···"

पार्टी से जब प्रकाश घर पहुँचा तो रात का एक बज चुका था। जमना उसकी प्रतीक्षा करते-करते सो गई थी। वह निशदिन उसके देर से घर आने की अभ्यस्त हो चुकी थी। प्रकाश आज कुछ अधिक पी आया था और उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे। कमरे में प्रवेश करते ही उसके पाँव लड़खड़ाये और वह सँभल न सका। उसके धड़ाम से गिरने से जमना की आँख खुल गई। उसने बिस्तर पर लेटे-लेटे आँखें खोलकर एक दृष्टि प्रकाश को देखा और फिर आँखें बन्द कर लीं। नशे में धुत् आना उसका नियम-सा बन गया था...आरम्भ में तो उसने उसे समझाया। वह बड़ी रात गये तक बिना खाये-पीये उसके लिए आँखें बिछाये रहती; किन्तु जब वह फिर भी न सँभला और पहले से भी अधिक पीने लगा तो उसने उसे कुछ कहना छोड़ दिया...जिस व्यक्ति को अपनी पत्नी और बच्ची का तनिक भी ध्यान न हो, जो अपने परम कर्त्तव्य की ओर से आँखें मीच ले तो वह बैठी उसकी प्रतीक्षा करती... किस उद्देश्य से...वह इस प्रकार की व्यर्थ पति-भक्ति से ऊब चुकी थी और अब उसने अपनी जीवन-नौका को परिस्थितियों की लहरों पर छोड़ दिया था।

थोड़ा समय गिरा रहने के पश्चात् प्रकाश स्वयं सँभलकर उठा और जमना की चारपाई के पास जाकर उसे उठने के लिए पुकारने लगा। जमना उसकी आवाज़ को सुनकर भी लेटी रही। प्रकाश ने एक-दो बार फिर उसे धीरे-से पुकारा और लक्ष्मी का मुख चूमकर रसोईघर में चला गया। खाना बर्फ़ हो रहा था। उसने थाली उठाई और बिना चाह के खाने लगा। बड़ी कठिनता से उसने दो-चार ग्रास मुँह में डाले और फिर हाथ उठा लिया। जमना लेटी हुई धीरे-से कनखियों से उसको देखती रही; किन्तु हिली नहीं। उसने एक ही हठ पकड़ रखी थी ..यदि वह उसकी परवाह नहीं करते तो वह क्यों दिन-रात पागलों के समान उनके तलवे चाटती रहे।

कुछ दिन वीतने के बाद एक सुबह सरकार ने प्रकाश को बुलवा भेजा। वह प्रकाश से पाँच वर्ष का कण्ट्रैक्ट लिखवाना चाहता था। उसने उसकी तनखाह एकसौ दस रुपये से एकसौ पचास रुपये निश्चित कर दी और पब्लिसिटी में उसका नाम देने का भी वचन दिया। सरकार को पूरा विश्वास था कि इन सुविधाओं को देखकर वह अवश्य यह नया कण्ट्रैक्ट स्वीकार कर लेगा; किन्तु उसका अनुमान ठीक न निकला। प्रकाश के मुख पर तनिक-सी भी खिलन उत्पन्न न हुई और थोड़ी देर मौन विचार के बाद उसने कोई भी कण्ट्रैक्ट करने से इन्कार कर दिया। उसके मुख से 'न' का शब्द सुनते ही सरकार के पाँव-तले की धरती खिसक गई; फिर भी उसने सँभलते हुए झट डेढ़सौ के स्थान पर दोसौ तनखाह देने का वचन दिया।

"नहीं दादा···अब मैं यहाँ किसी प्रकार नहीं रहूँगा।" प्रकाश ने दृढ़ स्वर में कहा।

क्यों···तुम्हें यहाँ कोई तकलीफ़ है खास ?"

"नहीं···यहाँ से मन ही उचाट हो चुका है।"

"एक बार फिर सोच लो प्रकाश ! यह वक्त फिर हाथ नहीं आयेगा।"

"मैं जानता हूँ दादा···मेरी बदनसीवी कि मैं आपके अहसानों का बदला नहीं चुका सकता···मैं यह भी जानता हूँ कि अगर आज आपसे पाँचसौ माँगूँ तो भी आप देने से इन्कार नहीं करेंगे···लेकिन इसका क्या इलाज कि मुझे अब यहाँ काम ही नहीं करना।"

"तो क्या करोगे···यह कला छोड़ के झक मारोगे ?" सरकार ने क्रोध में आते हुए कहा।

प्रकाश उसके मुँह से यह वाक्य सुनकर तिलमिला गया; किन्तु चुप रहा और क्षण-भर रुककर बोला—

"यह आपसे किसने कहा ?···कला को नहीं मैं तो मॉडर्न थियेटर को छोड़ रहा हूँ।"

यह कहकर प्रकाश वाहर चला गया। अभी उसके कण्ट्रैक्ट के तीन महीने शेष थे। म्यूज़िक रूम में कुन्दन उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था। इस समय मिस्टर सरकार द्वारा वुलाये जाने पर उसके मन में कई शंकाएँ उठ रही थीं। प्रकाश को आते देखकर उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा। प्रकाश ने आगे वढ़कर धीरे-से उसके कान में कहा—

"आज दादा को जवाव दे दिया।"

"Thats good···अव मैदान साफ़ है···कल भी राज का ख़त आया था।" कुन्दन ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा।

"लेकिन · यार कुन्दन ··"

"क्या वात है ?"

"वम्वई में काम न वना तो क्या होगा ?"

"तो क्या हुआ···जो तकदीर में लिखा है उसे कोई साला नहीं छीन सकता।"

"यहाँ तो अपने-आप पर से ही यकीन उठ गया है···तकदीर का क्या भरोसा।"

दिल को कड़ा रखो···घवराओ नहीं···आओ···" यह कहते हुए कुन्दन ने अलमारी में से शराव का भरा एक प्याला निकाला और प्रकाश के हाथ में दे दिया। प्रकाश गटागट एक ही वार पूरी शराव पी गया। उसके मस्तिष्क में छाई हुई अरक्षित भविष्य की धूल मदिरा द्वारा एक ही घूंट में धुल गई और वह कुन्दन के गले मिलकर अनायास हँसने लगा।

कुन्दन पहले ही नशे में था; कुछ देर वाद वोला—

"प्रकाश ! वम्वई जाकर हमें भूल तो न जाओगे।"

"कल की क्या कह सकता हूँ···सुना है, वड़ा रंगीन शरीर है।"

"है तो···इसीलिये डरता हूँ कि कहीं तुम्हारा दिल न वदल जाये।"

"दिल की बात करते हो...सचमुच इसका क्या भरोसा...हाँ, एक काम करो।"

"क्या ?"

"सीना चीरकर कम्बख़्त को पास ही रख लो न...मेरी याद तुमको दिलाता रहेगा।" प्रकाश ने अन्तिम पंक्ति गुनगुनाई।

इस पर दोनों अनायास फिर एक साथ हँसने लगे और दीवानों की भाँति हाथ-में-हाथ डाले म्यूज़िक रूम में नाचने लगे। नाचते-नाचते दोनों एक साथ झूमकर प्यानो से जा टकराये। एक शोर हुआ और साथ के कमरे से मुकर्जी एकाएक देखने चले आये कि क्या बात है और दोनों को गिरे देखकर उन्हीं पाँव क्रोध से बाहर निकल गये।"

उसी शाम प्रकाश को राज का पत्र आ गया। बम्बई मूवीटोन के चन्द्र सेठ ने उसे अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया था। उसे कम्पनी का म्यूज़िक इन्चार्ज नियुक्त किया गया था और तीनसौ रुपये महीना वेतन निश्चित हो पाया था। इसके अतिरिक्त बम्बई में रहने के लिए बिना किराये का फ़्लैट और हर फ़िल्म के बाद वेतन में उचित बढ़ोतरी का आश्वासन भी था। यह पत्र पढ़ते ही प्रकाश की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। वह पत्र लेकर सीधा यह शुभ सूचना सुनाने के लिए कुन्दन के कमरे में चला आया। कुन्दन उसीकी प्रतीक्षा कर रहा था। प्रकाश को बधाई देते हुए उसने अलमारी से नई बोतल निकाली और दोनों मित्र पीने लगे।

आज भी प्रकाश को घर आने में विलम्ब हो गया। जब सीढ़ियाँ पार करके वह अपने कमरे में पहुँचा तो जमना जाग रही थी। उसे यूँ असाधारण रूप से जागते हुए देखकर प्रकाश को अचम्भा हुआ कहीं वह आज शीघ्र तो घर नहीं लौटा ?...यह सोचकर उसने कलाई पर बँधी घड़ी पर दृष्टि डाली। रात का एक बजा ही चाहता था। वह घबरा गया और सीधा जमना के पास चारपाई पर जा बैठा। वह फटी दृष्टि से घबराई हुई पसीने में लथपथ उसे देखे जा रही थी। लक्ष्मी आराम

से बिस्तर पर सो रही थी। प्रकाश ने आश्चर्य से पूछा—

"क्या हुआ जमना ?"

"जमना उसके साथ चिपक गई।"

"क्यों जमना ? क्यों डर रही हो ?···" प्रकाश ने फिर पूछा।

"वह शराबी···" उसने उखड़ी आवाज़ में कुछ कहना चाहा।

"कौन ?"

"वह बंगाली···जो ऊपर रहता है।"

"बोस बाबू ··क्यों, क्या कहा उसने ?"

"हाँ, वही बोस···नशे में चूर हमारे आँगन में आ गिरा।"

"तब ?···"

"मैं समझी···आप हैं।" वह यह कहकर रोने लगी।

उसने कोई बुरी बात कह दी ?"

"नहीं ··"

"तो ··"

"मैंने उसे कन्धे का सहारा देकर उठाया···और उसकी आवाज़ सुनकर भाग आई।"

"ओह···तो क्या हुआ ? इसमें डरने की क्या बात है।"

"किसी पराये पुरुष को कंधे का सहारा देना कोई अच्छी बात है।"

"अनजाने में सब ठीक है···आओ···बैठ जाओ।"

"मुझे यहाँ अकेले में डर लगता है···आप समय पर घर क्यों नहीं आते···कल शाम भी दरबान और होटल वाले पठान में झगड़ा हो गया था।"

"तुम्हें क्या इससे···यह तो बड़े शहरों में होता ही रहता है······ लड़ाई-झगड़ा छुरी-चाकू ··"

"तो मैं ऐसे स्थान पर न रहूँगी···गाँव चली जाऊँगी।"

"चिन्ता न करो···भगवान ने तुम्हारी सुन ली है।"

"क्या ?"

"हम कलकत्ता ही छोड़े जा रहे हैं।"

"आप भी गाँव चलियेगा ?" जमना की आँखों में एकाएक चमक आ गई।

"नहीं···हमें वम्वई जाना होगा।"

"क्यों ?" जमना ने झट पूछा।

"और नौकरी मिल गई है···तीनसौ रुपये महीना···और इसके साथ रहने के लिए मकान···अब हमारे सब कष्ट दूर हो जायेंगे।"

"आपके··मेरे नहीं।"

"वह कैसे ?"

"आय कम है तो सस्ती पी लेते हैं··अधिक हो गई तो विदेशी और महँगी पीने लग जायेंगे······हम तो रहे वहीं-के-वहीं।"

"जमना···" प्रकाश ने ऊँचे स्वर में पुकारा।

"इसमें झूठ क्या है ; जैसी मैं यहाँ बुरी वैसी वहाँ हूँगी।"

"नहीं जमना···यूँ न कहो···क्या मुझसे यूँ परायों का-सा व्यवहार करना उचित है तुम्हारे लिए ?"

"आप उसीको अपनाइये न जिसके संग रात काटकर आते हैं; मैं आपकी होती ही क्या हूँ।"

"ऐसा भी क्या···दो घड़ी आऊँ तो विगड़ बैठती हो···अब मैं तुम्हें क्योंकर विश्वास दिलाऊँ कि मेरे मन में कोई दूसरा नहीं।"

"और यह शराब ?"

"पगली···यह तो जीवन का सहारा है···इसे छोड़ दिया तो जीऊँगा कैसे ?"

"मेरे बिना तो जी लेंगे न···" जमना ने और निकट आते हुए कहा।

प्रकाश ने उसे छाती से लगा लिया और मुँह से ह्विस्की की बास छोड़ते हुए बोला—नहीं मेरी जमना···तुम भी तो एक उन्माद हो···

एक अमर उन्माद, जो मेरी साँसों में घुल-मिल गया है···मेरे हृदय की धड़कनों में आ वसा है। तुम्हें भला मैं अपने से पृथक् कैसे कर सकता हूँ।"

जमना ने उसके मुख से कई वार वातें सुनी थीं। वह जव भी नशे में झूमता हुआ आता, ऐसे दो-एक वाक्य उसके मुख से निकल ही जाते। होश में होते हुए शायद ही कभी उसने, उसे प्यार से पुकारा हो; किन्तु आज यह जानते हुए कि प्रकाश नशे में है, वह प्रेम की उछाल में आ गई और उसने अपनी गर्म-साँसों को उसे सौंप दिया।

तीन महीने भी समाप्त हो गये। आज प्रकाश की विदाई का दिन था। स्टेशन पर उसके मित्र और गॉडर्न-थियेटर के अन्य अधिकारी उसे छोड़ने आये। लक्ष्मी अव दो वर्ष से ऊपर थी, और वड़ी प्यारी वातें करती थी। कुन्दन उसके लिए टाफ़ियों का डिव्वा तथा ढेर से खिलौने लाया था। जव गाड़ी ने प्लेटफ़ार्म छोड़ा, तो जमना का मन भर आया। प्रकाश को विदा करते हुए कुन्दन की आँखें छलछला आईं। जमना के लिये यह एक नये स्वप्न का आरम्भ था···वह एक नए लक्ष्य की ओर जा रहे थे···जहाँ आशा ने उनके सामने कई महल खड़े कर रखे थे। वह इस परिवर्तन से प्रसन्न थी। कलकत्ता का घुटा-सा जीवन, उसे पसन्द न आया था। गाड़ी की गति धीरे-धीरे तीव्र हो रही थी। वह दोनों मौन वैठे अपनी-अपनी कल्पना में खो गये···शायद यह सोच रहे थे कि ऐसे ही उनके जीवन की गति भी तीव्र हो रही थी।

वम्वई स्टेशन पर सेठजी की गाड़ी उन्हें ले जाने के लिए खड़ी थी। राज और कम्पनी का मैनेजर भी उनके स्वागत के लिए आये। राज ने प्रकाश का परिचय मैनेजर धीरूभाई से करवाया। और फिर सव गाड़ी में वैठकर मंटूगा की ओर चल दिये, जहाँ कम्पनी ने उनके रहने का प्रवन्ध किया था।

नया निवास-स्थान देखकर जमना फूली न समाई। नई आवादी में साफ़-सुथरा और खुला मकान था। अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले उच्च

श्रेणी के व्यक्ति थे। मकान में प्रविष्ट होते ही उसने एक विचित्र मानसिक परिवर्तन अनुभव किया।

राज का घर भी निकट ही था। आज का खाना उनके लिए उसीके घर से आया था। उनके आते ही कुछ पड़ोसी भी उनसे परिचय करने चले आये और जमुना को प्रतीत होने लगा कि वह किसी अपरिचित स्थान पर नहीं आई। आते ही वह अपने घर की सजावट में लग गई। मकान बड़ा था, पर उनके पास सामान अधिक न था। उसे समझ न आ रहा था कि वह इस घर को कैसे जँचाये। प्रकाश ने उसके मन की बात भाँपते हुए पूछा—

"क्या सोच रही हो ?"

"मकान के बारे में...... कितना सुन्दर है !"

"किन्तु, इसे सजाने के लिए समान नहीं, है न......?"

"आप मेरे मन की बात कैसे जान गये ?"

"तुम्हारे मन की बात मैं नहीं तो क्या कोई दूसरा जानेगा !" प्रकाश ने मुस्कराकर कहा। जमुना लजा गई और सूटकेस से कपड़े निकालने लगी।

"घबराओ नहीं ;" प्रकाश बोला, "भगवान ने चाहा तो एक-दो माह में तुम्हारी यह अभिलाषा भी पूरी हो जायेगी।"

संध्या को ही प्रकाश का परिचय बम्बई मूवीटोन के मालिक चन्द्र सेठ से हो गया। राज स्वयं उसे सेठजी की कार में बिठाकर कम्पनी के स्टूडियो में दादर ले गया।

स्टूडियो में प्रवेश करते ही प्रकाश ने एक सरसरी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई। उसने अनुभव किया कि स्टूडियो के सब कर्मचारी उसे ही देख रहे हैं। शायद वह उसे राज के संग देखकर कोई नया 'हीरो' समझ रहे थे। यहाँ का वातावरण कलकत्ता के स्टूडियो से विभिन्न था।

चन्द्र सेठ से उसकी भेंट एयर-कन्डीशन्ड दफ़्तर में हुई। सेठ उसके अनुमान के बिलकुल विपरीत निकला। वह सरकार के समान व्यापारी

और गम्भीर न दिखता था, न वह तौंद निकाले कोई धन-कुवेर लगता था, बल्कि नये विचारों और मध्यम अवस्था का एक सुशिक्षित और सभ्य व्यक्ति दिखाई दे रहा था। राज और प्रकाश को आते देखकर उनके स्वागत के लिए वह उठ खड़ा हुआ। राज ने आपस में उनका परिचय कराया और दोनों मेज़ के सामने कुर्सियों पर बैठ गये। सेठ के बाएँ एक सुकुमार सुन्दरी विराजमान थी जिसके वस्त्रों और मेक-अप से यह अनुमान लगाना कठिन न था कि वह कोई एक्ट्रेस थी। प्रकाश अभी यह बात सोच ही पाया था कि सेठ ने पान की गिलौरी मुँह में रखते हुए कहा—

"इनसे मिलिये......हमारी कम्पनी की हीरोइन मिस लता...... राज के साथ हमारी नई फिल्म 'तूफ़ान एक्सप्रेस' में काम कर रही हैं... और आप हैं मिस्टर प्रकाश—हमारे नये म्यूज़िक डायरेक्टर।"

दोनों ने एक-दूसरे को देखा और अभिनन्दन के लिए हाथ जोड़े। लता ने मधुर स्वर में इस भेंट पर प्रसन्नता प्रगट की और फिर सेठजी का संकेत पाकर दूसरे कमरे में चली गई। उसकी आवाज से स्पष्ट था कि वह कोई ऐंग्लो-इण्डियन लड़की है। उसके चले जाने के पश्चात् कमरे में कुछ देर के लिए मौन छा गया और फिर सेठजी बोले—

"कलकत्ता में हीरा पड़ा सड़ रहा था।"

"जी......" प्रकाश उनकी बात को न समझते हुए बोला।

"और वह हीरा है प्रकाश.........राज का भला हो कि वह हीरे को ठीक जौहरी के पास ले आया।" सेठजी ने राज की ओर देखते हुए मुस्कराकर कहा।

"मैं ख़िदमत के लिए हाज़िर हूँ...फ़रमाइये, क्या करना होगा?"

"मेरी कम्पनी को चार चाँद लगा देने होंगे.........अपने कमाल से हिन्दुस्तान-भर में छा जाना होगा......सबके होंठों पर मेरी ही कम्पनी के नग़मे नाच रहे हों।"

"कोशिश तो यही होगी......आप मुझ पर भरोसा रखिये।"

"और आप भी······किसी किस्म की तकलीफ़ न होने दूँगा··· चन्द ही दिनों में आपको शोहरत के आसमान पर बिठा दूंगा।"

इसी समय चपरासी आया और चाय रखकर जाने लगा तो सेठजी ने उसे रोकते हुए कहा—"देखो ! धीरूभाई जी से कहो, प्रकाश का Agreement ले आये।"

थोड़े समय बाद धीरूभाई Agreement लिये भीतर आ गया। इसमें वही शर्तें थीं जो राज ने प्रकाश को पत्र में लिखी थीं। प्रकाश ने बिना किसी झिझक के हस्ताक्षर कर दिये। सेठजी ने हस्ताक्षर हो जाने पर उससे हाथ मिलाया और धन्यवाद कहा। राज उठकर मेकअप-रूम में चला गया और थोड़ी देर के लिए फिर कमरे में मौन छा गया, फिर प्रकाश ने प्रश्न किया—

"मुझे प्रथम म्यूज़िक किस फ़िल्म में देना होगा ?"

"तूफ़ान एक्सप्रेस में।"

"तूफ़ान एक्सप्रेस ?" यह नाम सुनकर प्रकाश कुछ चौंक पड़ा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे एकाएक किसीने डंक मार दिया हो। उसके मुख पर एक रंग आता, एक जाता। उसके भावों को समझते हुए चन्द्र सेठ बोला—

"क्यूँ···नाम पसन्द नहीं आया क्या ?"

"है तो, किन्तु यह तो कोई स्टन्ट पिक्चर मालूम होती है।"

"अपनी कम्पनी तो मार-धाड़ की फ़िल्मों में सानी नहीं रखती। इस साल के प्रोग्राम में हम चार और ज़बरदस्त फ़िल्में बना रहे हैं। 'डाकू की लड़की', 'चीन का सौदागर', 'तूफ़ान मेल' और 'जादू नगरी'। और इन चारों फ़िल्मों का संगीत आपको ही देना होगा।"

सेठजी की बात पर प्रकाश झेंप-सा गया। अपने मस्तिष्क में उन फ़िल्मों के नाम सोचते हुए एक बार फिर अपने निर्णय के विषय पर विचार करने लगा। उसे विचार-मग्न देखकर सेठजी ने फिर प्रश्न किया—

"क्यों, क्या बात है?"

"कुछ नहीं सेठजी, यही सोच रहा था कि हमसे अनजाने में भूल हो गई।"

"क्या ?" सेठजी कुर्सी पर उछल पड़े।

"मैं तो शायद इन फ़िल्मों में संगीत न दे सकूँ।"

"क्यों ?" उनका हाथ अनायास मेज़ की घंटी पर पड़ा। चपरासी ने भीतर झाँका। सेठजी के मुख से निकला, "एक गिलास पानी।"

"एक नहीं दो," प्रकाश वींच में ही बोल उठा और सेठजी की ओर देखते वोला, "राज-गायक से चित्रपट-संगीतकार तो बना; किन्तु पैसे के लिए···सस्ते संगीत के लिए अपनी कला का गला नहीं घोंट सकता।"

"मतलब यह कि यह फ़िल्में आपकी दृष्टि में घटिया हैं?" सेठजी गम्भीरतापूर्वक वोले।

"मेरा आशय यह नहीं है। पर हर चीज़ की अपनी एक सीमा होती है। इसी 'सीमा' के लिए शायद मैं न लिख सकूँ। मेरा विचार था कि आप मॉडर्न थियेटर की भाँति सामाजिक चित्र बनाते हैं।"

सामाजिक चित्र वनाना इतना आसान नहीं। यह तो हर व्यक्ति का अपना-अपना क्षेत्र है। पूना की प्रभात और कलकत्ता की 'मॉडर्न', सोशल-फ़िल्में वनाने में सफल हैं और छा चुकी हैं। यहाँ की सागर-कम्पनी भी रूमानी-संग़ीत में चल निकली है। इनके मुक़ावले में आना तो मार खाना है।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता···मेरे खयाल में हर अच्छी चीज़ अच्छी है चाहे वह कहीं भी बनी हो, किसी फ़िल्म-कम्पनी में और दुनिया को अपना सकती है।"

"मेरी राय में तो आर्ट और व्यापार दो अलग-अलग चीज़ें हैं।"

"यह आपकी राय है और मैं इसे झुठलाता नहीं···हाँ, एक अर्ज़

करूँगा',

"फ़रमाइये ।"

"मुझे एक मौका दीजिये···एक सोशल फ़िल्म चालू करके उसमें संगीत देने का ।"

"सोशल ?" चन्द्र सेठ उछलकर बोले ।

"जी···सोशल···सामाजिक···आप मुझ पर भरोसा रखिये, आप मुकाबले में निकलें तो जरूर कामयाब होंगे ।"

"और अगर ऐसा न हुआ तो···" सेठजी ने पूछा ।

"तो······" क्षणभर सोचने के बाद प्रकाश बोला, "तो मैं आपकी स्टंट फ़िल्मों में संगीत दूँगा ।"

प्रकाश ने हाथ मिलाते हुए कहा और जाने के लिए उठ खड़ा हुआ । सेठजी ने उसे दूसरे दिन आकर नई फ़िल्म के विषय में निश्चित करने के लिए आने को कहा और उसे वेतन में से सौ रुपये पेशगी दिलवा दिये ।

प्रकाश के चले जाने के बाद सेठजी स्टूडियो में सैट पर आये जहाँ राज और लता की शूटिंग हो रही थी । राज के पास आते हुए उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा—

"It is done राज !"

"मुबारक हो···फ़ैसला क्या हुआ ?"

"वही जो आपने कहा था···मार-धाड़ वाली फ़िल्मों का नाम सुनकर हज़रत बिगड़ बैठे और संगीत देने से इन्कार कर दिया ।"

"तब···?"

"मैंने दूसरी कम्पनियों का हवाला देकर अपनी मजबूरियाँ बयान कीं ।"

"फिर ?···"

"फिर क्या···वही हुआ जो मैं चाहता था······खुद ही बोला··· मुझे एक सोशल फ़िल्म बनाने का मौका दिया जाये ।"

इसपर राज और सेठजी दोनों हँस पड़े । लता जो पास ही खड़ी थी

कुछ न समझते हुए बोली—

"क्यों, क्या हुआ ?"

"वह जिसकी उम्मीद न थी।" राज ने उत्तर दिया और सैट पर चला गया। लता उसका मुँह देखती रह गई।

सेठजी आज अत्यधिक प्रसन्न थे। उनकी योजना सफल होती दिखती थी। वह कलकत्ता और पूना की फ़िल्म-कम्पनियों के मुकाबले में खड़े होना चाहते थे···अच्छा संगीत और नई धुनें फिल्मों को लोक-प्रिय बनाने में सबसे बड़ी सहायक हैं···वह पहली भेंट में ही स्पष्टतः तो यह बात प्रकाश से न कह सके, किन्तु आवेश दिलाकर स्वयं उन्होंने उसके मुख से यही बात कहलवा ली। जब कोई कलाकार होड़ में सामने आता है तो अपना पूरा बल लगा देता है और ऐसे ही महान कला-कृतियों का जन्म होता है।"

दूसरे दिन प्रकाश और सेठजी में नई फ़िल्म के विषय में बातचीत आरम्भ हो गई। उन्होंने सोशल कहानियों के कई मसविदे खरीद रखे थे और प्रकाश से परामर्श करने के लिए वह सब कहानियाँ उन्होंने उसके सामने रखीं। प्रकाश को इनमें से 'होली' नाम की क़हानी सबसे अधिक जँची और इसे फ़िल्माने का निर्णय हो गया।

'होली' फ़िल्म में राज को हीरो का अभिनय सौंपा गया ; किन्तु उनकी अभिनेत्रियों में कोई भी ऐसी न थी जो इस फ़िल्म की हीरोइन के योग्य होती। कम्पनी के पास अधिक लड़कियाँ या तो ऐंग्लो-इण्डियन थीं या ऐसी बालाएँ थीं जो सरकस से लाई गई थीं और मार-धाड़ वाली फ़िल्मों में ही काम कर सकती थीं। हीरोइन की कण्ठ-ध्वनि भी अति मधुर होनी चाहिये थी ; किन्तु इनमें न तो किसीका शुद्ध उच्चारण था और न किसीकी आवाज़ में मिठास थी। बड़े सोच-विचार के बाद सेठ साहब ने कहा कि वह मॉडर्न थियेटर अथवा प्रभात से लाई गई किसी भी अभिनेत्री के लिए अधिक-से-अधिक पैसा व्यय करने को तैयार थे। 'यह काम बड़ा कठिन था और प्रकाश के बस का रोग न था।

उसका विचार 'होली' के लिए किसी नई सूरत, किसी अछूती आवाज़ को प्रस्तुत करने का था। जब कोई अभिनेत्री इस काम के लिए न जँची तो प्रकाश ने विनम्र होकर कहा—

"एक राय दूँ सेठजी।"

"ज़रूर।"

"एक नई आवाज़...नई सूरत...कैसी रहेगी ?"

"विचार तो ठीक है लेकिन कहाँ है ऐसी चीज़ ?"

"मेहनत करनी पड़ेगी...ज़रूर मिल जायेगी...हुस्न और नग़मे से भरा पड़ा है हिन्दोस्तान।"

"वक्त बहुत कम है...मैं चाहता हूँ कि यह फ़िल्म दिवाली तक रिलीज़ हो जाये।"

"आपकी निगाह में कोई ऐसी सूरत, कोई ऐसी आवाज़ बम्बई में हो तो तो कहिये...आज़मा लिया जाये ?"

"बेकार है...हमने सब देख लिया...हाँ, एक सूरत है।"

"क्या ?"

"बम्बई से बाहर एक चीज़ है ऐसी जिसमें दोनों गुण हैं......आवाज़ भी और सूरत भी...लेकिन कम्बख्त मानती नहीं।"

"क्यों ? कोई वजह ?"

"बड़े-बड़े नवाबों और जागीरदारों की महफ़िल में गाती है...फ़िल्मों में गाना तौहीन समझती है।"

"कहाँ रहती है ?"

"लखनऊ के पास सुलतानपुर में...नाम है अनवरी बेग़म...बला का हुस्न है और गला पाया है कि क्या कहूँ।"

"आप उसे कब मिले ?"

"पिछले बरस...हैदराबाद के नवाब शमशेरजंग के यहाँ देखा था...ठुमरी और ग़ज़ल गाने में माहिर है। नवाब साहब से पता लिया,

मुलाकात हुई लेकिन ज़ालिम ने साफ़ इन्कार कर दिया। हाँ, वह ग़ज़ल उस रात उसने वहाँ गाई थी उसे मैंने टेप रिकार्ड कर लिया है।"

"सुना सकते हैं ?" प्रकाश ने उत्सुकता प्रगट की।"

सेठजी उसे म्यूज़िक रूम में ले गये और दोनों ने टेप पर रिकार्ड हुई ग़ज़ल सुनी। ज्योंही ग़ज़ल की पहली पंक्ति प्रकाश के कान में पड़ी, वह चौंक गया। आवाज़ बड़ी जानी-पहचानी थी। उसके मस्तिष्क में सहसा रत्ना की छवि उभर आई···वही आवाज़, बिलकुल वही· हाँ, भाव में थोड़ा अंतर अवश्य था· सो दो-ढाई वर्षों में हो जाना कोई बात नहीं· हो न हो यह रत्ना ही की आवाज़ थी···शायद उस्तादजी उसे उसकी माँ वाले पेशे में लौटा ले गये हों। ग़ज़ल बड़े प्यारे ढंग में गाई गई थी और गायिका की निपुणता का मुँह बोलता प्रमाण थी। प्रकाश स्तब्ध रह गया। उसके घाव हरे होने लगे। जब ग़ज़ल समाप्त हो गई तो उसने सेठजी से पूछा—

"कहीं इसका फोटो···"

"नहीं···वह नहीं···लेकिन देखा ज़रूर है···काफ़िर हुस्न बयान से बाहर है।"

प्रकाश चुप रहा। उसे विश्वास-सा हो गया था कि हो-न-हो, यह 'अनवरी बेगम' रत्ना ही है। कुछ देर सोचने के बाद बोला—

"अगर मैं इसे ले आऊँ···सेठजी !"

"तुम्हारा यह अहसान ज़िन्दगी-भर न भूलूंगा।"

"तो मुझे भिजवाने का बन्दोबस्त कीजिये।"

"यानी···"

"यानी गाड़ी की सीट और खर्च।"

"मैं भी चलूं क्या ?"

"नहीं···मुझे अकेले जाने दीजिये···और आज ही रात···।"

"खूब···मैं सब बन्दोबस्त किये देता हूँ···आप घर जाकर सामान तैयार कीजिये।" यह कहते हुए सेठजी ने घण्टी बजाकर कुछ आदेश देने के लिए मैनेजर को बुलवा भेजा।

स्टूडियो से घर जाते समय प्रकाश के मस्तिष्क में एक ही विचार था···रत्ना···रत्ना पर क्या बीती होगी। उसने अपना नाम क्यों बदल लिया?

ग्यारह

लखनऊ से टैक्सी में सवार होकर प्रकाश सुलतानपुर पहुँचा और डाक-बँगले में सामान रखकर पैदल ही गाँव की ओर रवाना हो गया। यात्रा से वह तंग आ गया था। शहर के वातावरण से उसकी साँस घुट-सी रही थी और खेतों की हरियाली देखकर उसका जी पैदल चलने को कर आया। दूर तक हरे-भरे खेत बड़ा सुन्दर दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। ऐसे दृश्य देखे उसे एक समय हो गया था।

इन दृश्यों में खोया, मन-ही-मन प्रकृति की प्रशंसा करता खेतों की पगडंडियों को लाँघता वह गाँव की ओर बढ़े जा रहा था। सहसा उसे दूर से कई व्यक्ति आते हुए दिखाई दिये। उसने जेब से वह काग़ज़ निकाला जिस पर अनवरी बेगम का पता लिखा हुआ था और सरसरी दृष्टि से पढ़कर फिर उसे जेब में रख लिया।

समीप आने से पता चला कि वह लोग किसी अर्थी के साथ आ रहे थे। आने वाले मुसलमान थे। प्रकाश को यह साहस न हुआ कि उनमें से किसीको रोककर अनवरी बेगम का पता पूछे। अर्थी गुज़र गई और वह मौन खड़ा जाने वाले लोगों को देखता रहा। जब अर्थी उठाये हुए वे आगे निकल गये तो प्रकाश ने गाँव में जाने के लिए पाँव बढ़ाये। अभी वह कुछ पग ही चला होगा कि एक मौलवी सरीखा दाढ़ीवाला व्यक्ति लँगड़ाता हुआ उसे आता मिला। यह व्यक्ति भी कदाचित् अर्थी के साथ वालों में से था। प्रकाश ने उसे रोककर विनम्र सम्बोधित

किया—

"मियाँजी···एक मिनट···"

"फ़रमाइये···" वह रुकते हुए माथे पर पसीना पोंछते बोला—

"सुलतानपुर यही है न ?"

"जी···वह रहा सामने···कहिये ?"

"एक पता चाहिए था···यहाँ कोई अनवरी बेगम भी रहती हैं ?"

"कौन अनवरी बेगम ? नवाब की हवेली वाली ?···वह जो गाती हैं ?"

"जी···जी···वही···मुझे उनसे मिलना है।"

"तो आइये मेरे हमराह···" मियाँजी ने अपनी दाढ़ी खुजाई और लँगड़ाता हुआ पगडंडी पर बढ़ गया। प्रकाश वहीं खड़ा आश्चर्य से उसे देखता रहा।। लँगड़ा व्यक्ति थोड़ा आगे चलकर रुक गया और प्रकाश को वहीं स्थिर खड़े देखकर-धीरे-से बोला—

"अब वह गाँव में नहीं ···"

"तो कहाँ है ?" प्रकाश ने उत्सुकता से पूछा।

"यह जनाज़ा अनवरी बेगम का ही जा रहा है···इसीलिये तो कह रहा हूँ, मिलना है तो चले आइये।" उस व्यक्ति ने तेज़ी से कहा और लँगड़ी टाँग को घसीटता आगे बढ़ गया।

यह बात सुनकर प्रकाश पर मानो बिजली-सी गिर पड़ी। वह पत्थर बना वहीं खड़ा-का-खड़ा रह गया। जिसकी खोज में इतनी यात्रा करके वह बम्बई से आया था उसका जनाज़ा उसकी आँखों के सामने से गुज़र गया···यह क्या अनर्थ है !···वह सोचने लगा। जनाज़ा अब काफी दूर निकल चुका था; किन्तु लँगड़ाता हुआ मौलवी अभी धीरे-धीरे पीछे चल रहा था।

अनवरी बेगम···रत्ना···रत्ना···अनवरी बेगम···प्रकाश का सिर चकरा गया और वह एकाएक मुड़कर तेज़ी से उधर चलने लगा जिधर लँगड़ा मौलवी गया था।

उसके कब्रिस्तान में पहुँचने तक अनवरी बेगम की कब्र खुद चुकी थी। मुल्लाजी कलमा पढ़ रहे थे और निकट सम्बन्धी कफ़न में लिपटी लाश को कब्र में रख रहे थे। प्रकाश दृष्टि बचाकर एक ओर खड़ा हो गया और ध्यानपूर्वक उस लाश को देखने लगा। मिट्टी डालने से पूर्व उन्होंने थोड़ी देर के लिए मृत के मुँह से कफ़न हटाया। प्रकाश ने देखा, वास्तव में कफ़न में लिपटी सुन्दरी में बला का आकर्षण था! आस-पास खड़े सब लोगों की आँखों में आँसू झलक रहे थे। युवा की मृत्यु··· कितना दुखदायी दृश्य था! प्रकाश उसे अधिक न देख सका और पीछे हट आया। शव का मुँह देखकर यद्यपि उसे अत्यधिक दुःख हुआ; किंतु इस बात की सांत्वना भी हुई कि मरने वाली उसकी रत्ना न थी··· कोई और था।

वहाँ से पीछे हटकर प्रकाश उस पगडंडी पर चलने लगा जो कब्रिस्तान से निकलकर दूर रेलवे-लाइन पर जा मिलती थी। जीवन की यह मंजिल और यह अनोखी यात्रा उसके मस्तिष्क में एक पहेली बनी हुई थी। अनवर की मृत्यु ने उनकी योजना में रुकावट-सी डाल दी थी···एक हल्की-सी निराशा ने उसे घेर लिया था और वह उदास-हृदय से आँखें नीचे किये बढ़ता चला जा रहा था। पगडंडी के आस-पास कितनी ही कब्रें थीं, कोई नई कोई पुरानी, कोई कच्ची टूटी-फूटी-सी और कोई पक्की पत्थर की···न जाने कितने कलाकार, योद्धा···कितने कोमल सुकुमार चेहरे जीवन-यात्रा से थककर इन गढ़ों के नीचे लम्बी ताने सो रहे थे! आज इन लोगों का इस संसार से कोई नाता न था, कोई सम्बन्ध न था···यह वही प्राणी होंगे जो कल ज़रा से घाव से कराह उठते थे, जिनमें प्रेम था, गौरव था?·· क्या नहीं था···और आज इन्हें कौन जानता है···सबने बिसरा दिया···वह जीवन-मरण की बातें सोचता चला जा रहा था।

सहसा चलते-चलते उसके पाँव रुक गये। एक कोने में एक ताज़ा-सी कब्र पर काले वस्त्रों में कोई स्त्री फूल चढ़ा रही थी। प्रकाश को

यूँ अनुभव हुआ जैसे अनवरी बेगम ही जीवित होकर उठ आई हो और अब अपनी ही कब्र पर फूल रख रही हो। वह एक टक उस उदास मुखड़े को निहारने लगा। वह स्त्री भी फूल चढ़ाते-चढ़ाते रुक गई और उस नवागन्तुक को निहारने लगी जो उसे यूँ देखे जा रहा था। प्रकाश को यूँ अनुभव हुआ जैसे वह उसको पहचानता हो। अपनी शंका दूर करने के लिए वह और निकट आ गया और एकाएक उछलकर चिल्लाया— "रत्ना···!"

वह स्त्री काँपकर खड़ी हो गई। प्रकाश ने फिर पुकारा—'रत्ना'! अबके वह स्त्री शीघ्र फूल कब्र पर रखकर आगे बढ़ गई। प्रकाश को विश्वास हो गया कि वह उसकी रत्ना ही थी और उससे मिलना न चाहती थी। बड़ी विचित्र बात थी···वह अनवरी बेगम को रत्ना समझ कर उसकी खोज में इस कब्रिस्तान में आया और अनवरी बेगम मर गई···और इसी कब्रिस्तान में उसकी खोई हुई रत्ना मिल गई···बड़ा अनोखा मेल था!

वह स्त्री कब्रिस्तान से निकलकर खेतों में आ गई। प्रकाश उस कब्र पर पहुँचा और उस पर लगी नाम की तख्ती पढ़ने लगा। उस्ताद बुन्दे-अलीखाँ का खुदा हुआ नाम पढ़कर वह चौंक गया। निस्सन्देह यह रत्ना ही थी। वह मुड़ा और उसका पीछा करने लगा। रत्ना भी थोड़े-थोड़े समय बाद मुड़कर पीछे देख लेती।

अब वह गाँव में पहुँच गये थे। रत्ना एक मकान के सामने रुक गई। प्रकाश झट पीछे से उसके सामने आ गया और हाथ के संकेत से उसे रोक लिया। इन दो-ढाई वर्षों में उसमें कितना परिवर्तन आ गया था! विषाद की रेखाओं ने फूल से मुखड़े पर अपने चिन्ह अंकित कर दिये थे।

"आप मेरा पीछा क्यों कर रहे हैं?" रत्ना ने उदास दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा।

"इसलिए कि तुम्हें अब मेरी ज़रूरत है।"

मुझे किसीकी ज़रूरत नहीं।" वह क्रोध में झुँझलाई।

"उस्तादजी के चले जाने में वाद तो तुम बिलकुल अकेली रह गई हो रत्ना !" प्रकाश ने करुण-स्वर में सहानुभूति जताई।

रत्ना की आँखों में आँसू छलक आये और उसने मुँह मोड़ लिया।

"ज़माने ने तुम्हें किन दुखों में डाल दिया···कहाँ थीं इतने दिनों ?"

वह चुप रही और रोने लगी। प्रकाश उसके और निकट आ गया। रत्ना संकोच से सिमटकर थोड़ा पीछे हट गई। प्रकाश ने धीरे-से उसके कंधे पर हाथ रखा और वह काँपकर अलग हो गई और द्वार से भीतर चली गई। प्रकाश भी दाएँ-वाएँ दृष्टि दौड़ाकर उसके पीछे हो लिया। वहाँ और कोई व्यक्ति दिखाई न देता था। मकान के आँगन में एक ओर चूल्हे में दो लकड़ियाँ सुलग रही थीं। रत्ना अपनी कँपकँपी छिपाने के लिए वहीं बैठ गई और फूँकें मारकर आग को तेज़ करने लगी। थोड़ी देर वाद लकड़ियों ने आग पकड़ ली और लपटें उठने लगीं। प्रकाश ने सोचा रत्ना का हृदय उस लकड़ी के समान था जिसमें धूआँ था और आग न थी···वह केवल दहक रहा था। उसके जीवन में भी ऐसी ही ज्वाला, ऐसा ही शोला भड़काना पड़ेगा।

"रत्ना !" जब आग जल गई तो उसने पीछे खड़े रत्ना को पुकारा।

रत्ना ने मुड़कर उसकी ओर देखा। प्रकाश भी वहीं बैठ गया और फिर कुछ देर वाद बोला—

"मेरे साथ चलोगी ?"

"कहाँ ?"

"बम्बई··"

"क्यों ?"

"तुम्हारी ज़िन्दगी बदल जायेगी···इसी कारण तुम्हें खोजता यहाँ आया हूँ।"

"आपको कैसे पता चला कि मैं यहाँ हूँ ?"

"भगवान ने वसीला निकाल ही दिया है कोई···और रत्ना ! मैं तो कहता हूँ यह कुदरत खुद ही हमें जुदा करती और मिलाती रहती है·· देखो न, जिसे यहाँ लेने आया उसका जनाज़ा देखना पड़ा और जिसकी तमन्ना दिल में अँगड़ाइयाँ ले रही थी उसे वहीं मज़ारों में पाया।"

"वह कौन थी ?"

"अनवरी बेगम·· एक जानिब वह दफ़न हो रही थी और दूसरी जानिब तुम मेरा रास्ता रोके बैठी थीं·· उम्मीद को दफ़न किया और ज़िन्दगी नसीब हुई।"

"मेरी समझ में तो कुछ नहीं आया।"

"लम्बी कहानी है, दो जुमलों में कैसे बयान हो सकती है·· चलो मेरे साथ···रास्ते में ज़िन्दगी-भर का दुःख रो लेंगे·· अभी वक्त बहुत कम है।"

"लेकिन एक अनजानी जगह ठोकरें खाने क्यों चलूं ?"

"जगह ज़रूर अनजानी है लेकिन मैं अनजान नहीं······मुझ पर भरोसा रखो।"

"भरोसा ? अब तो अपने-आप पर भी भरोसा नहीं रहा।" वह फ़ीकी मुस्कराहट लाते हुए बोली।

प्रकाश ने उसे विश्वास दिलाया, विनती की, समझाया-बुझाया और उसे साथ चलने पर सहमत कर ही लिया। उसकी बातों में सच्ची सहानुभूति थी, एक प्रकार का जादू था जिसकी ओर रत्ना खिंच गई। वह प्रकाश से अब भी प्रेम करती थी और उसका हृदय न तोड़ना चाहती थी। इसके अतिरिक्त उसे अब अपने भविष्य का भी कुछ सोचना था। उसका अपना इस गाँव में था ही कौन। उस्ताद बुन्देअलीख़ाँ के स्वर्गवास हो जाने के बाद उसका यहाँ रहने का उद्देश्य ही क्या था।

मकान जिसमें वह रह रही थी, टूटी-फूटी पुरानी हवेली थी जो उस्तादजी की मृत्यु के पश्चात् उनके भांजे करीमबख्श के भाग में आई

थी। सुन्दर और निःसहाय स्त्री पर तरस खाकर उसने उसे टिके रहने की अनुमति दे रखी थी। करीमबख्श कभी उसकी कुशलता पूछने चला आता। वह जानती थी कि उसकी दृष्टि अच्छी नहीं और वह सहानुभूति की ओट में विलास की भावना छिपाये हुए है···फिर भी क्या करती···स्त्री जाति, कोई ठौर-ठिकाना नहीं, चारदीवारी में पड़े रहना ही उचित था। वह करीमबख्श को अधिक मुँह न लगाती और डरी-डरी रहती थी। उसने कभी भी उसे अकेले में अपने घर आने का अवसर न दिया।

प्रकाश का आना उसके लिए आशा की ज्योति बन गई और वह चलने के लिए तैयार हो गई। प्रकाश का होना स्वयं उसके लिए साहस था···उसने सोचा किसी दैवी-शक्ति ने ही उसे इस दशा में उसके पास भेजा था, वरन् उसके पास तो उसका पता भी नहीं था··· वास्तव में प्रकृति उनका पुनर्मिलन चाहती है। उसने शीघ्र ही अपनी थोड़ी-सी पूँजी और कपड़े एक गठरी में बाँधे और प्रकाश से बोली—

"चलिये···मैं तैयार हूँ।"

हवेली को ताला लगाकर उसने गठरी उठाई और प्रकाश को वहीं खड़ा करके ताले की चाबी देने के लिए गली के नुक्कड़ पर करीमबख्श के मकान में गई। करीमबख्श मकान के मर्दाने में बैठा चाय पी रहा था। अचानक रत्ना को देखकर भौचक रह गया। इससे पहले वह कभी स्वयं उसके मकान पर और फिर मर्दाने में न आई थी। वह कुछ देर तो आश्चर्य में उसे सिर से पैर तक देखता रहा और फिर स्वयं खड़ा होकर उसे बैठने को कहा। रत्ना ने हवेली की चाबी तिपाई पर रख दी।

"यह क्या ?" करीमबख्श ने झट पूछा।

"मैं जा रही हूँ···यह गाँव छोड़कर।" रत्ना ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।"

"कहाँ ?" करीमबख्श की समझ में कुछ भी न आया।

जहाँ नसीब ले जाये।

"यह अचानक क्या सूझी···क्यों अपनी इज़्ज़त को ख़तरे में डाल रही हो···जवान औरत और अकेले भटकना···यह तो अच्छा नहीं··· मामूँजान मरहूम की रूह तड़प उठेगी यह जानकर···मेरा खयाल न सही उन्हींका ध्यान करो···कोई तकलीफ़ हो तो···" उसके मुँह में जो कुछ भी आया वह विना साँस लिये कहता चला गया। रत्ना को अनायास कुछ हँसी आ गई, वोली—

"भाईजान ! मैं अकेली नहीं जा रही।"

"तव कौन हमराह···?"

"एक पुराना साथी···अच्छा, ख़ुदा हाफ़िज···" रत्ना ने उसे बात पूरी न करने दी और सलाम करके चलने लगी।

"एक पुराना साथी···" उसने दोहराया और फिर कुछ रुककर प्रश्न किया—"कौन है वह ?"

"कोई भी हो···इससे आपको क्या ?" रत्ना ने यह कहा और लंबे डग भरती हुई वाहर निकल गई।

करीमवख्श कुछ देर अशक्त-सा खड़ा देखता रहा और फिर उसे रोकने के लिए वाहर की ओर भागा। रत्ना प्रकाश के साथ गली के मोड़ पर जाती दीख रही थी। करीमवख्श पत्थर-सा बनकर खड़ा देखता रहा···पक्षी हाथ से उड़ गया। उसने क्रोध में हाथ में थामी चाबी धरती पर पटक दी।

चार दिन की प्रतीक्षा के बाद बाहर से भागकर आते हुए लक्ष्मी ने तोतली जवान में जमना को 'वावा' के आने की सूचना दी। जमना भागकर बाल्कनी पर आ खड़ी हुई और नीचे सड़क पर देखने लगी। प्रकाश अकेला न था बल्कि एक स्त्री उसके साथ थी। वह लपककर उन्हें देखने के लिए द्वार पर जा खड़ी हुई। आने वाली स्त्री साधारण धोती पहने, सूखी आँखों और उलझे वालों में उसे पहले कहीं देखी हुई सूरत ज्ञात हुई···किन्तु वह कौन थी···मस्तिष्क पर बल देने पर भी

उसे पहचान न सकी। प्रकाश ने देहली पर खड़े होकर धीरे-से रत्ना को भीतर चलने के लिए कहा। रत्ना क्षण-भर के लिए हिचकिचाई और फिर जमना को हाथ बाँधकर नमस्कार करके भीतर बढ़ी।

जमना को आश्चर्य में देखकर प्रकाश ने पूछा—

"जानती हो इन्हें?"

"नहीं तो···" जमना ने सिर हिलाया।

"यह रत्ना है।"

"रत्ना···वही प्रसिद्ध गायिका रत्ना···" जमना के मुँह से निकला और वह ध्यानपूर्वक उसे देखने लगी। रत्ना की सूखी आँखों में चमक आ गई। उसने मुस्कराकर जमना की ओर देखा और धीरे-से कहा—

"हाँ! रत्ना···मैं वहीं रत्ना हूँ जिसने आपकी शादी पर मुबारक गया था।"

"किन्तु, यह क्या दशा बना रखी है अब?···इतना परिवर्तन···"

"हाँ बहन! यूँ ही होता है जब नसीब साथ न दे तो···"

"जमना ने रत्ना की गठरी पकड़ ली और वह दोनों भीतर आ गये। प्रकाश के मन की दशा को वह न जान सकी; किन्तु स्वयं उसे कोई अज्ञात भय चिन्तित किये जा रहा था।

थोड़ी देर घर में रहने के पश्चात् प्रकाश स्टूडियो चला गया और रत्ना को तैयार रहने के लिए कह गया। जाने से पूर्व उसने पत्नी को अलग बुलाकर कहा—

"देखो! रत्ना को अपनी हालत या कलकत्ता के बारे में कुछ मत कहना।"

"मैं क्यों कहूँगी?"

"और जब वह नहा ले तो अपनी एक अच्छी-सी साड़ी उसे पहनने को निकाल देना।"

"कहिये तो वह ब्याह की रात वाला जोड़ा पहना दूँ?" जमना ने व्यंग से कहा।

"जमना ! मुझे उसको दुलहन नहीं बनाना…नौकरी के लिए ले जाना है…" प्रकाश ने रुखाई से उत्तर दिया और चुपचाप बाहर निकल गया।

सेठजी दफ़्तर में बैठे उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसके आने की सूचना उन्हें मैनेजर से मिल गई थी। प्रकाश ने स्टेशन से उतरते ही मिस्टर धीरूमल को टेलीफून द्वारा अपने पहुँचने से सूचित कर दिया था। प्रकाश के प्रसन्न-मुख को देखकर सेठजी ने उसकी सफलता का अनुमान लगा लिया था और उसके सामने बैठते ही उन्होंने प्रश्न किया—

"अनवरी से मुलाकात हुई क्या ?"

"जी ! लेकिन मैं बहुत देर से पहुँचा।"

"क्या कोई……"

"मुझसे पहले कोई दूसरा उसे ले गया।" प्रकाश ने बात काटते हुए कहा।

"कौन दूसरा ?" सेठजी ने घबराकर पूछा।

"इस दुनियाँ से नहीं दूसरी दुनियाँ से……जब मैं सुलतानपुर पहुँचा तो अनवरी बेगम को दफ़नाया जा रहा था……वह मेरे पहुँचने से पहले ही चल बसी……मैंने तो उसके जनाज़े से मुलाकात की। उसकी लाश से मिला।"

चन्द्र सेठ को इस अकस्मात् सूचना से आघात लगा, और वह हृदय को मसोसकर रह गया और एक निःश्वास खींचकर बोला—

"अब क्या होगा ?"

"कुछ नहीं……चिन्ता मत कीजिये 'होली' बनेगी और दिवाली तक ज़रूर रिलीज होगी।"

"कैसे…?"

"आपको जो चाहिए सो मैं ले आया हूँ……एक नई आवाज़ जिसे सुनकर लोग कलेजा थाम लें…एक नया चेहरा जो दिल में हलचल पैदा कर दे।"

"मैं समझा नहीं।"

"अनवरी बेगम मर गई लेकिन रत्ना ज़िन्दा है······"

"कौन रत्ना ?"

"जिसकी मुझे एक मुद्दत से तलाश थी······सच पूछिये तो अनवरी बेगम की आवाज़ ने ही मुझे इस धोखे में डाल दिया था कि वह रत्ना की आवाज़ है···और मैं दरअसल उसे रत्ना समझकर ही लाने निकला था······बस, किस्मत ने साथ दिया कि वहीं पर रत्ना भी मिल गई।"

"कहाँ है वह ?" सेठजी ने उत्सुकता से पूछा।

"मेरे घर।"

"तो चलिये···वहीं चलें।"

"ऐसी जल्दी भी क्या है···कितना लम्बा सफ़र करके आई है, अभी थकान तो उतर लेने दीजिए।"

"तब···?"

"शाम को उसे यहीं लेता आऊँगा।"

सेठजी को सांत्वना हुई। वह इस नये चेहरे को देखने के लिए बहुत व्याकुल थे जिसके कंठ, स्वर की प्रकाश ने इतनी प्रशंसा की थी, वह उस मधुर स्वर को स्वयं अपने कानों से सुनने को बैचेन थे; किन्तु प्रकाश पर अपनी व्याकुलता प्रकट न करना चाहते थे। फिर उनसे न रहा गया बोले—

"अब क्या सो रही है ?"

"जी······सुबह से सिर-दर्द की शिकायत है।"

"आपकी मुलाकात कैसे हुई ?"

"बहुत पुरानी मुलाकात है···अनवरी बेगम को मिलने जाना तो हम दोनों के फिर से मिल जाने का इत्तिफ़ाक बन गया।"

"कैसे अचानक मिल गई ?" सेठजी को बात रोचक लगी।

"उसी कब्रिस्तान में···एक तरफ़ अनवरी दफ़नाई जा रही थी

और दूसरी तरफ़ रत्ना एक मज़ार पर फूल चढ़ा रही थी।"

"खूब···कितना खूबसूरत इत्तिफ़ाक है···दुनियाँ तड़प उठेगी।" सेठजी बोले।

"इस इत्तिफ़ाक से नहीं बल्कि उसकी आवाज़ से।"

"सूरत कैसी है ?" सेठजी ने फिर पूछा।

"शाम को सामने आ जायेगी।" प्रकाश ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया और जाने की आज्ञा चाही। सेठजी ने उठकर उसे गले लगाया और शाम होने की प्रतीक्षा में बैठ गये।

उधर सूरज ढला और इधर सेठजी के कमरे में चाँद निकल आया। रत्ना प्रकाश के संग उनके कमरे में प्रविष्ट हुई······गुलाबी रंग की रेशमी साड़ी में वह सौंदर्य की एक सुकुमार-सी गुड़िया लग रही थी। सेठजी उसे देखते ही खड़े हो गये। प्रकाश ने दोनों का परिचय कराया। रत्ना के मुख पर संकोच से हल्की-सी लालिमा दौड़ गई।

"कहिये सेठजी ! क्या इरादा है ? प्रकाश एक ओर बैठते हुए सेठजी की मनोभावना को भाँपने का प्रयत्न करते हुए बोला। वह देख रहा था, रत्ना ने सेठजी को कितना प्रभावित किया है।

" 'होली' ज़रूर बनेगी और मिस रत्ना ही को हीरोइन बनना होगा।" चन्द्र सेठ बोले।

"लेकिन यह ख़याल रहे सेठजी ! रत्ना इससे पहले ऐक्टिंग का कोई तजुरबा नहीं रखती।"

"जिसकी हर अदा अदाकारी का एक नमूना हो उसे तजुरबे की क्या ज़रूरत ?"

"तो आइये, इनकी आवाज भी सुन लीजिये।" प्रकाश कुर्सी से उठा और तीनों म्यूज़िक-रूम में पहुँचे। साज़ मिलाये गये और प्रकाश ने रत्ना को गाने के लिए कहा। रत्ना पहले तो लजाई; किन्तु फिर प्रकाश के आग्रह पर विनम्र बोली—

"क्या सुनियेगा ?"

"जो आपको पसंद हो।" सेठजी झट बोल उठे।

"कहीं ऐसा न हो मेरी पसंद आपकी नापसंद हो।"

"नामुमकिन।"

"फिर भी·······ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, गीत···क्या सुनाऊँ ?"

"सेठजी ग़ज़ल के आशिक हैं।" प्रकाश ने बात समाप्त करते हुए कहा।

"तो ठीक है, ग़ज़ल ही हो जाये।" सेठजी ने आग्रह किया और फिर बोले, "साज़ और सोज़ दोनों का पता चल जायेगा।"

रत्ना ने प्यार-भरी दृष्टि से प्रकाश की ओर देखा और गाना आरम्भ किया—

ऐ दीदा-ए-गिरयाँ क्या कहिए, इस प्यार भरे अफ़साने को।

इक शमा जली बुझने के लिए, इक फूल खिला मुरझाने को।

रत्ना ग़ज़ल गाती रही और प्रकाश साज़ बजाता रहा। चन्द्र सेठ तो ऐसे विभोर हो गये जैसे कोई भरपूर पिला दे। उन्होंने इससे पहले सैकड़ों आवाज़ें सुनी थीं···रेडियो पर, फ़िल्मों में · कोठों पर, संगीत-सभाओं में; किन्तु ऐसी सोज़-भरी आवाज़ उसने कभी न सुनी थी··· रत्ना सचमुच संगीत-जगत् का चमत्कार थी। ग़ज़ल समाप्त होते ही उसके मुँह से निकला—

"जवाब नहीं···मिस रत्नाबाई········ सचमुच तुम्हारा जवाब नहीं······मैं सोच भी न सकता था कि प्रकाश की खोज इस कदर ला-जवाब होगी······शाहकार होगी।"

सेठजी ने प्रभावित होकर अपनी हीरे की अँगूठी उँगली से उतारकर रत्ना की ओर बढ़ाई। रत्ना ने अँगूठी लेने से इन्कार कर दिया। सेठजी के आग्रह करने पर उसने धीरे से कहा—

"क्या यह कम है कि आपने इस नाचीज़ की आवाज़ को सराहा··· और यह अँगूठी···मुआफ़ कीजियेगा, मैंने आज तक किसीकी अँगूठी

नहीं पहनी ।"

"ओह !······सेठजी ने अँगूठी फिर उँगली में पहनते हुए कहा । "लेकिन आपकी आँखों से यह आँसू ?"

"कुछ यूँ ही वह निकले···बेचारे जज़बात की तह में छिपे रहते हैं······उधर वह मचले इधर यह रिसने लगे ।" रत्ना ने कहा और साड़ी के आँचल से उन्हें पोंछ डाला ।

सेठजी चुप हो गये और फिर तीनों म्यूज़िक-रूम से उठकर उनके कमरे में आ गये । चाय पीते हुए सेठजी ने रत्ना से वेतन की बाबत पूछा । रत्ना प्रकाश की ओर देखते हुए बोली—

"मैं क्या अर्ज़ करूँ सेठजी ! जो ज़िम्मेदारी आप लोग मुझ पर डाल रहे हैं······सोचती हूँ, उसे निभा भी सकूँगी क्या ?"

"यह तुम हम पर छोड़ दो······वैसे ऐश-आराम न सही, ज़िन्दगी काटने को तो रुपया चाहिये ही ।"

सेठजी की बात सुनकर रत्ना ने फिर प्रकाश की ओर देखा जो चुप बैठा उनकी बातें सुन रहा था । रत्ना को घबराहट में देखकर बोला—

"हाँ, हाँ······शरमाओ नहीं···अपनी शर्तें अभी तय कर लो ।"

"जब मेरा पासबान मेरे पास बैठा हो तो मैं क्या तय करूँगी ।" रत्ना ने कहा ।

प्रकाश उसकी इस बात पर चौंक गया और रुककर बोला—

"बात मुझपर है तो मैं सेठजी पर छोड़ता हूँ ।"

"तो ठीक है······आप लोग काम शुरू करें, मैं ठीक ही फ़ैसला कर दूँगा ।"

प्रकाश सन्तुष्ट था कि वह रत्ना को अच्छे स्थान पर लाने में सफल हो गया है और रत्ना प्रसन्न थी कि उस्तादजी के बाद प्रकाश के सहारे वह अपनी नाव जीवन की इस नवधारा में प्रवाह सकती है । सेठजी को नमस्कार करके दोनों उनके कमरे से बाहर निकल आये ।

दूसरे दिन ही से 'होली' को फ़िल्माने का कार्य आरम्भ हो गया ।

राज को रत्ना से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आज जीवन में पहली बार उसे इतनी शिष्ट, सुलझी हुई और सभ्य हीरोइन मिली थी। उसका हर शब्द उचित और नपा-तुला था। प्रकाश भी पूरे मन से फ़िल्म के लिए नित नई अछूती धुनें निकालने लगा। स्टूडियो में चहल-पहल रहने लगी। फ़िल्मी जगत् में रत्ना के नाम की चर्चा होने लगी और लोग बड़ी बेचैनी से छायापट पर इस नये चेहरे को देखने और नई आवाज़ को सुनने की प्रतीक्षा करने लगे। सेठजी ने रत्ना के लिए पाँचसौ रुपये महीने निश्चित किये थे और वह इस पर सन्तुष्ट थी।

रत्ना के आ जाने से मानो प्रकाश के जीवन ने पलटा खाया हो। अब वह पहले के समान अलग-अलग और गम्भीर न रहता! जीवन सम्बंधी उसकी रुचियाँ बढ़ गईं और वह प्रसन्नचित्त दीखने लगा। रत्ना का संग और काम की लगन···दिन घड़ियाँ बनकर और घड़ियाँ क्षण बनकर उड़ने लगीं। 'होली' की हर धुन विचित्र थी, राज और रत्ना का अभिनय अति सुन्दर था। रत्ना यद्यपि पहली बार फ़िल्म में आई थी तथापि उसने इस सुन्दरता से अपना पार्ट निभाया कि कोई विश्वास न कर सका कि वह फ़िल्मी संसार में प्रथम बार आई थी। सब खुश थे···सबको पूर्ण विश्वास था कि फ़िल्म के रिलीज़ होने पर हरएक की ज़बान पर यही होगा···रत्ना की कामयाब फ़िल्म—होली···"

इस सुख के वातावरण में यदि कोई दुखी था तो वह थी जमना, जो दिन-रात चिन्ता में घुली जा रही थी। रत्ना ने प्रकाश को दीवाना बना रखा था। उसमें कोई ऐसा जादू था जो प्रकाश को निरन्तर अपनी ओर खींचे लिये जाता था। उसे यूँ प्रतीत हो रहा था जैसे उसके स्वामी उससे दूर हुए जा रहे थे···वह उसे जीवन की गहरी खाई में छोड़कर चले जायेंगे। कई प्रकार के डर उसके मन में समा गये थे···वह यह सब मौन देख रही थी; किन्तु उसका हृदय डाह की अग्नि में दहक रहा था···धीरे-धीरे जल रहा था···उसका मन कह

रहा था कि यह 'होली' उसके लिए लहू की होली हो जायगी...प्राणों की होली...

रत्ना उन्हींके घर में रह रही थी। कई बार उसने अलग दूसरे मकान में उठ जाने की इच्छा प्रकट की ; किन्तु प्रकाश ने उसे जाने न दिया। यद्यपि जमना इस घनिष्ठ मेल-जोल के कारण रत्ना को आँख का तिनका समझती थी, तथापि वह भी यह न चाहती थी कि वह अलग जा कर रहे। ऐसा होने से प्रकाश को गुप्त मेल-जोल रखने का अवसर मिल सकता था और यह सहन करना उसके लिए और भी कठिन था।

रत्ना समझदार स्त्री थी। सब-कुछ पा लेने पर भी उसने अपनी बुद्धि नहीं खोई। वह नारी-हृदय और गृहस्थ के जीवन को भली प्रकार समझती थी और जमना को कभी अपने व्यवहार अथवा जलन पर उँगली उठाने का अवसर न देती। प्रकाश को वह समय पर स्टूडियो से घर वापस लाती और शाम को लौटकर प्रायः जमना को बलपूर्वक साथ बाज़ार ले जाती...कभी वे तीनों मिलकर घूमने भी चले जाते। लक्ष्मी से तो उसे अत्यधिक प्यार हो गया था और वह आये दिन उसके लिए कुछ-न-कुछ ले आती...कभी मिठाई, कभी कोई खिलौना और कभी कपड़ा। जमना की उदासी को दूर करने के लिए वह नित नये उपाय सोचती ; किन्तु एक जमना थी कि अपनी भावनाओं पर अटल थी...उसकी जलन किसी भाँति भी दूर न होती। वह उस तूफ़ान को भाँप रही थी जो उसके वैवाहिक जीवन पर भयानक घटाओं की भाँति मँडरा रहा था।

'होली' पूर्ण हो गई और दिवाली की जगमगाती रात में बम्बई के एक बड़े सिनेमा हॉल में उसका उद्घाटन हुआ। फ़िल्मी दुनियाँ का हर महत्वपूर्ण व्यक्ति इस 'शो' पर उपस्थित था। रत्नाबाई आज एक बहुमूल्य झिलमिलाती साड़ी में लोगों के सम्मुख आई। उसके एक ओर प्रकाश और दूसरी ओर सेठजी थे। दर्शकों ने तालियों से उनका स्वागत

किया। पूरा हॉल तालियों की आवाज़ से गूंज उठा। कुछ प्रेमियों ने फूल भी बरसाये। प्रकाश की खुशियों की कोई थाह न थी। इस अवसर पर उसे कलकत्ता से कुन्दन का बधाई का विशेष तार आया।

इस हर्ष और उल्लास के सागर में जमना एक कोने में दुबकी बैठी यह सब-कुछ देख रही थी। यह रत्ना पर बरसते हुए फूल उसे शूल बनकर लग रहे थे···और लोगों की सराहना, तालियाँ···उसे यूँ प्रतीत हो रहा था मानो सब मिल-जुलकर उसे चौराहे में पीट रहे हों··· गालियाँ निकाल रहे हों। यह सब वह प्रयत्न करने पर भी सहन न कर सकी और बीच में ही अधूरी फ़िल्म छोड़कर चुपके-से हॉल में से निकल आई।

'होली' एक अति सफल सोशल-पिक्चर निकली। उसका हर गीत, उसकी हर धुन, उसका अभिनय सब उत्तम थे। देखने वालों ने प्रशंसा के पुल बाँध दिये। सेठजी इस सफलता पर फूले नहीं समा रहे थे। उनकी गरदन फूलों के ढेर में दिखाई न दे रही थी।

प्रकाश की आशाएँ सम्पूर्ण हुईं। उसे आशा से बढ़कर अपने परिश्रम का फल मिला। उसे फिर उसी प्रसन्नता का भान हुआ जो आज से बहुत पहले रत्ना की सफलता पर महाराज जयपुर के दरबार में हुआ था।

फ़िल्म समाप्त होने के बाद जब रत्ना और प्रकाश हॉल से बाहर निकले तो जमना वहाँ न थी। लक्ष्मी राज के पास सो रही थी। इधर-उधर देखने पर भी जमना का कोई पता न चला। यह सोचकर कि शायद वह किसी कारण पहले उठकर घर चली गई हो, वह कम्पनी की गाड़ी में बैठकर घर लौट आये।

जमना घर में ही थी। उन दोनों को इकट्ठे आते देखकर जल-भुन गई; किन्तु मुख से कुछ भाव प्रकट न करते हुए उसने दोनों को इस महान् सफलता पर बधाई दी।

"किन्तु तुम आईं कब ?" प्रकाश ने शंकामयी दृष्टि से उसे देखते हुए पूछा।"

"इन्टरवल के बाद···सिर में बड़ी पीड़ा हो रही थी।"

"बता के चली आतीं···हम व्यर्थ चिन्ता करते रहे।"

"व्यर्थ कैसी" रत्ना ने प्रकाश की बात को काट दिया और जमना के पास आकर बोली, "अब कैसी है तबीअत ?"

"ठीक हूँ···जरा देर सो गई थी।"

जब दोनों जाने लगे तो जमना ने हाथ के संकेत से उन्हें रोक दिया और काजल की डिबिया उठाकर दोनों के माथे पर काली रेखा खींच दी।

"यह क्या ?" प्रकाश ने पूछा।

"कालिख···इतनी बड़ी सफलता मिली है···नज़र न लग जाये कहीं।"

इस पर दोनों हँस पड़े। रत्ना ने जमना को गले लगा लिया। जब दोनों उसके कमरे से चले गये तो जमना मन-ही-मन सोचने लगी···यह टोना कैसा रहेगा···आज बर्तन माँजने वाली बाई ने कहीं से लाकर उसे दिया था, दोनों में अनमन उत्पन्न करने के लिए··· पति को वश करने का टोना—दूसरी स्त्री के प्रति घृणा का टोना··· इसका प्रभाव क्या होगा······

इसी टोने की कल्पना करते हुए वह बड़ी रात तक करवटें बदलती रही।

बारह

मालावार हिल्ज़ की धनाढ्य बस्ती के एक सुन्दर फ़्लैट की बाल्कनी में खड़ी रत्ना नीचे बसे बम्बई शहर को देख रही थी। रात के दस बज चुके थे और शहर की जगमगाती बत्तियाँ यूँ लग रही थीं मानो किसीने काली ओढ़नी पर फुलझड़ियाँ बिखेर दी हों।

हवा मन्द थी और वातावरण शीत और मौन। घूमती हुई उसकी दृष्टि विशाल समुद्र पर पड़ी जो अँधेरे में स्पष्ट दीख रहा था··· यहाँ से उसके नयन मीलों दूर सागर में स्थित लाइट-हाउस पर जा टिके और फिर वहाँ से घूमते हुए शहर की बत्तियों पर। वह व्याकुल-सी जान पड़ती थी। कई बार बीच में वह ड्राइंग-रूम में भी हो आई थी ···उसे किसीकी प्रतीक्षा थी···और वह अभी तक न आया था।

प्रतीक्षा करते-करते उसकी आँखें बोझल हो गईं और वह आराम करने के लिए ड्राइंग-रूम में आकर सोफ़े पर लेट रही। नींद तो न आ रही थीं; किन्तु उसने पलकें बंद कर लीं जिससे बाहर बिजली का उजाला तो हट गया परन्तु, भीतर अन्तस्थल में अतीत की कोमल मधुर स्मृतियों के कई दीपक जलने लग गये···यह स्मृतियाँ उसकें जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन चुकी थीं।

रत्ना अब पहले वाली रत्ना न थी। वह फ़िल्मी दुनियाँ की एक प्रसिद्ध अभिनेत्री मिस रत्ना थी। पूरा हिन्दुस्तान उसके सौंदर्य का दीवाना था···लोग उसका मधुर स्वर सुनकर थम जाते···और इसका श्रेय प्रकाश को था जो उसे सुल्तानपुर की गुमनाम गलियों से खोज

कर लाया और लाकर बम्बई के मालाबार हिल पर बिठा दिया। वह दिन उसे आज ही की भाँति याद था...कैसे वह स्वर्गीय उस्ताद बुन्दे-अलीखाँ के मज़ार पर आँसू बहा रही थी और कैसे भगवान ने प्रकाश को भेजकर उसके जीवन को एकाएक पलट दिया। उस्तादजी की याद से वह तड़प उठी। यह उन्हींकी शिक्षा थी, उन्हींका प्यार था जिसने उसे इस योग्य बनाया था कि वह इस उत्कर्ष तक पहुँच सकी।

उसे बम्बई में आये दो वर्ष बीत चुके थे। इस बीच में कई परिवर्तन हुए, समय ने कितनी करवटें लीं। जब वह आई थी तो उसका मासिक वेतन पाँचसौ रुपये निश्चित हुआ था और अब वह पाँचसौ, पाँच हज़ार बन चुके थे। वह देश की चोटी की नायिका थी। 'होली' के पश्चात् उसने चार और फ़िल्मों में भी काम किया था और यह सब फ़िल्में 'हिट' थीं। प्रकाश के संगीत और उसके अभिनय ने बम्बई मूवी-टोन को देश की उच्च श्रेणी की फ़िल्म कम्पनियों में ला खड़ा किया था।

रत्ना को कई और फ़िल्म कम्पनियों ने अधिक दामों पर अपने यहाँ बुलाने की चेष्टा की; किन्तु उसने इन्कार कर दिया। इसी कम्पनी के कारण वह इस स्थान पर पहुँची थी...यह रुपया, यह मकान...एक नई गाड़ी...नौकर-चाकर और यह नाम...सब इसी कम्पनी की देन थी...और वह इस कम्पनी को न छोड़ना चाहती थी।

उसे भगवान ने सब सुख दे रखे थे; किन्तु एक विचार था... एक उलझन थी, जो प्रायः उसके मनोमस्तिष्क पर छाई रहती...उसे कभी-कभार तो यह विचार ऐसे घेर लेता कि उसे कुछ सूझ ही न पड़ता और यह विचार था प्रकाश से असीम प्यार का...वह उससे मौन प्रेम करती थी...एक बार हृदय में आकर प्रकाश ने स्थायी-वास बना लिया था। उस पहली रात से जब उसने राज-दरबार में तलवारों का नाच प्रस्तुत किया था, वह उसे कभी न बिसरा सकी थी.. उसे प्रकाश से निःस्वार्थ प्रेम था। प्रकाश का ब्याह हो चुका था। वह स्वयं जमना के

लिए अपने मन को आहुति देकर, प्रकाश को उसे सौंप आई थी। उसने अचानक राज-दरबार को इसलिये छोड़ा था कि वह कहीं दूर जाकर उसे भूल जाने का प्रयत्न करें ; किन्तु वह ऐसा न कर सकी थी··· प्रकाश सदैव उसके मन का मीत बना रहा। भाग्य ने भी उससे खेल खेला और एक बार फिर अकस्मात् दोनों को इतना निकट कर दिया। शायद धीरे-धीरे स्वयं यह चिंगारी बुझ जाती; किन्तु अब नहीं······ यह भावना बड़ी प्रबल थी; किन्तु परिस्थितियों के कारण वह इन्हें हृदय की गहराई में छिपाये रखती···उसे जमना का भी ध्यान था·· और फिर लक्ष्मी जिसका पूरा बालपन, पूरी जवानी, पूरा जीवन पड़ा था··· वह अपने प्रेम की चिंगारी फेंककर एक नन्हे-से सुन्दर घरौंदे को कैसे उजाड़ सकती थी!

सहसा कल्पना के छायापट पर अतीत और भविष्य के चित्र देखकर फिर उसकी आँखों में आँसू छलक आये। उसने आँखें खोलीं और आँसू पोंछकर सामने दीवार पर टँगी तस्वीर को देखने लगी। यह तस्वीर उसकी और प्रकाश की थी। प्रकाश बैठा प्यानो बजा रहा था और वह प्यानो का ही सहरा लिये गा रही थी। यह तस्वीर उसे बड़ी प्यारी लगती थी। उसने सोफ़े पर लेटे-लेटे धड़ उठाया और तस्वीर में प्रकाश की छवि देखने लगी।

एकाएक नीचे मोटर के हॉर्न की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। वह उठकर बाल्कनी की ओर भागी और नीचे सड़क पर देखने लगी। उसका प्रियतम आ गया था। प्रकाश ने ड्राइवर से कुछ कहा और झूमता हुआ सीढ़ियों की ओर बढ़ा। ऐसे लगता था जैसे उसने पी रखी हो। रत्ना रोज़ की तरह उसे सहारा देने के लिए नीचे जाने लगी; किन्तु किसी विचार ने उसे रोक लिया और वह बाल्कनी में ही खड़ी नीचे देखती रही। बाल्कनी में संगमरमर की तिपाई रखी थी। अपनी मनोभावना को छिपाने के लिए वह तिपाई पर उँगलियों से लकीरें बनाने लगी। बाहर आहट हुई और प्रकाश ने उसका नाम लेकर पुकारा।

रत्ना आवाज़ सुनकर बाल्कनी की मुंडेर के पास आ खड़ी हुई और दूर फैले हुए विशाल समुद्र को देखने लगी।

प्रकाश को जब वह मकान के किसी कमरे में दिखाई न दी तो वह उसे ढूंढ़ता हुआ बाल्कनी में आ पहुँचा। रत्ना ने उसके पाँव की चाप सुनी; किन्तु उसने मुड़के भी नहीं देखा। प्रकाश बिलकुल उसके समीप आ खड़ा हुआ। जब फिर भी उसने कोई ध्यान न दिया तो उसने धीरे-से अपना हाथ रत्ना के कन्धे पर रख दिया। रत्ना हाथ के छूते ही यूँ चौंकी मानो उसे उसके आने का कोई ज्ञान न हो। प्रकाश मुस्करा पड़ा और बोला—

"इतनी खोई हुई क्या सोच रही थीं ?"

"सोच नहीं रही थी···देख रही थी।"

"किसे ?"

"इन जगमगाती रोशनियों को···" उसने बाल्कनी से नीचे नगर की ओर संकेत किया।

"यह तो हर रात यूँ ही जगमगाती हैं।"

"हाँ······और हर रात किसीको देर तक इन्हें देखना पड़ता है किसीकी प्रतीक्षा में।"

"ओह! ···समझा···दरअसल बात कुछ यूँ थी रत्ना कि मैं सुधाकर के यहाँ रुक गया।"

"क्यों ?"

"नई फ़िल्म के गानों के लिए···बहुत सिर फोड़ा; किन्तु मुझे उनकी कोई तुक पसन्द नहीं आई।"

"आ भी कैसे सकती थी ?"

"नहीं···ऐसी बात नहीं।"

"मेरा मतलब था पीने के बाद इतना होश ही किसे रहता है।"

"ऐसी बात नहीं···वह तो बैठे-बैठे सुधाकर ने दो पैग डाल दिये।"

"ख़ैर···जाने दीजिये···आप खाना तो खाइयेगा ?"

"नहीं···जमना से वायदा कर आया हूँ कि लौटकर खाऊँगा।"

"तो ठीक है···वहीं खाइये···बेचारी रास्ता देख रही होगी।"

"तुम तो खा लो ना···मेरी वजह से···"

"नहीं···अभी भूख नहीं···" रत्ना वहाँ से हटकर संगमरमर की तिपाई पर आ बैठी। प्रकाश ने बाल्कनी की बत्ती जलाना चाहा; किंतु रत्ना ने उसे संकेत से रोक दिया और बोली—

"रहने दीजिये···अँधेरा अच्छा लगता है।"

प्रकाश चुपचाप कुर्सी खींचकर तिपाई के पास बैठ गया। रत्ना टाँगें लटकाकर संगमरमर की शीतल तिपाई पर औंधी लेट गई। उसका सिर प्रकाश की ओर था। कुछ देर यूँ ही मौन लेटे रहने के बाद उसने धीरे से कहा—

"किस फ़िल्म का गाना तैयार हो रहा है ?"

"नई तवारीखी फ़िल्म है···नाम का अभी फ़ैसला नहीं हुआ।"

"मौका कैसा है ?"

"कुछ मदद कर सकोगी ?"

"क्यों नहीं।" उसने उन्मादित अँखड़ियों से प्रकाश की ओर देखा।

सख्त अँधेरी रात है··· कुछ देर पहले बर्फ़ पड़कर रुकी है···शहनशाह बाबर की फ़ौजें आस-पास तम्बू ताने खड़ी हैं···बाबर को नींद नहीं आ रही···वह सख्त परेशान नज़र आता है और अपने तम्बू से बाहर निकल आता है। दूर तक बर्फ़ पड़ी है और चट्टानों के बीच में लगे तम्बुओं में से रोशनी छनकर निकल रही है···वह एक ऊँचे टीले पर जा रुकता है···" प्रकाश एक ही साँस में पूरा दृश्य बयान कर गया।

"तब ?" रत्ना ने रुचि प्रगट करते पूछा।

"एक सुरीली दर्द-भरी आवाज़ उसे सुनाई देती है···वह इधर-उधर देखता है···थोड़ी दूर एक टीले पर कोई हसीना अकेली बैठी

हल्के सुरों में एक मुहब्बत-भरा गीत गा रही है···ग्रौर इस गाने वाली हसीना का रोल तुम्हीं कर रही हो।"

प्रकाश ने उँगली से रत्ना की ग्रोर संकेत करते हुए कहा।

"मौका तो वेहद खूबसूरत है।"

"लेकिन मौज़ूं नहीं वन रहा।"

"तो मेरी जानिव देखिये···" रत्ना ने दोनों हथेलियों में ग्रपनी ठोड़ी को टिकाते हुए प्रकाश की ग्रोर देखा।" फ़र्ज़ कीजिये···मैं उस टीले पर तन्हा बैठी हूँ···पाँव में वर्फ़ है ग्रौर दिल है कि मुहब्बत की ग्राग में दहक रहा है···जल रहा है···सामने ग्रँधेरी रात में यह रोशनी कुछ वैसा ही समाँ वाँध रही है—मेरा शहनशाह मेरे क़रीव खड़ा मेरी ग्रावाज़ सुन रहा है ग्रौर मैं वेखवर गाये जा रही हूँ।" रत्ना यह कहते-कहते रुक गई ग्रौर वाल्कनी से झाँककर दूर तक विखरी हुई रोशनी को निहारने लगी। प्रकाश उसकी ग्राँखों में कुछ ग्रछूतापन देख रहा था। रत्ना को वह मौन होते देखकर वह बोला—

"तव ?···"

"मैं गा रही थी···एक दर्द-भरा नग़मा···सोज़ ग्रौर ग्रावाज़ एक साथ मिले हुए थे···दरग्रसल यह गीत खुद ही दिल के तारों को छेड़-कर निकल रहा था।"

"लेकिन वह नग़मा···" प्रकाश ने पूछा।

"कुछ ऐसे था मेरा गीत—

मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है।
ज़मीं तो ज़मीं ग्रासमाँ जल रहा है।

"वाह···खूब···क्या मुखड़ा बाँधा है···वाह रत्ना!" प्रकाश बोला।

"कहिये, पसन्द ग्राया ?"

तुमने तो सब मुश्किल ग्रासान कर दी···लो, ग्रभी बनाता हूँ इसकी धुनें। यह कहते ही प्रकाश उठा ग्रौर प्यानो की ग्रोर बढ़ा। रत्ना झट

उछलकर सामने आ गई और उसे रोकते हुए बोली—

"शायद आप भूल गये हैं…"

"क्या ?" प्रकाश ने पूछा।

"जमना घर पर आपकी राह देख रही है।" रत्ना ने चंचल भाव से उत्तर दिया…और फिर कुछ रुकते हुए बोली, "आपको खाना भी खाना है।"

"ओह !…" प्रकाश ने झेंपकर कलाई पर बँधी घड़ी को देखा।

"शायद ग्यारह बजने को हैं ?" रत्ना ने पूछा।

"दस बजकर चालीस मिनट—" प्रकाश ने धीरे-से उत्तर दिया और फिर बोला, "लाओ कोई क़ाग़ज़…ज़रा लिख लूं।"

रत्ना साथ वाले कमरे में काग़ज़ का पैड लेने चली गई और प्रकाश दूर बम्बई की जगमगाती बिजलियों को देखने लगा। सर्वत्र एक मौन छाया हुआ था और उसके कानों में वह पंक्ति गूंज रही थी जो अभी रत्ना गाकर गई थी…"मुहब्बत में सारा जहाँ जल रहा है"…उसने सोंचा ठीक तो है…यह ज्वाला किसके मन में नहीं दहकती…हाँ, इसकी जलन अपने-अपने हृदय पर निर्भर है…उसे यूं अनुभव हुआ कि इन दो पंक्तियों द्वारा धीरे-से रत्ना ने दो बेबस हृदयों की छिपी पीड़ा प्रगट कर दी हो।

प्रकाश के जाने के कुछ समय बाद फिर द्वार की घण्टी बजी। रत्ना चौंक पड़ी और यह सोचकर कि शायद प्रकाश किसी कार्य-वश लौट आया है, वह द्वार की ओर बढ़ी। फिर कुछ सोचकर रुक गई और खिड़की से झाँककर देखने लगी। सामने शीशे में उसे सेठजी का प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। रत्ना झट दबे-पाँव सोने के कमरे में चली गई और जाते हुए चुपके से 'रोज़ी' के कान में कुछ कह गई। रोज़ी रसोईघर से निबटकर निकलना ही चाहती थी कि घण्टी की आवाज़ फिर आई और रोज़ी ने जाकर किवाड़ खोला।

किवाड़ खुलते ही सेठजी ने भीतर प्रवेश किया। उनके हाथ में

सुन्दर सुगन्धित फूलों का एक गुलदस्ता था। यह सुनकर कि रत्ना सो रही थी, वे कमरे में चारों ओर दृष्टि घुमाते हुए बोले—

"अभी से ? अभी तो ग्यारह बजे हैं ?"

"सिर-दर्द की शिकायत थी···आते ही सो गईं।"

"कब लौटी थीं ?"

"लगभग नौ बजे।" रोज़ी ने कहा।

सेठजी एड़ियों के बल कमरे में घुस गये। रत्ना के सोने के कमरे का पर्दा उठा था और वह अपने पलंग पर सो रही थी। सेठजी को सांत्वना हुई। फूलों का गुलदस्ता और एक डिबिया प्यानो पर रखते हुए वह बोले—

"उठें तो कह देना मैं आया था।"

यह कहकर सेठजी बाहर जाने के लिए बढ़े; किन्तु देहली के पास जाकर क्षण-भर के लिए रुक गये और बोले—

"प्रकाश आया था क्या ?"

रोज़ी क्षण-भर के लिए इस प्रश्न पर घबरा गई; किन्तु सँभलती हुई बोली, "नहीं···"

सेठजी सीढ़ियाँ उतर गये और रोज़ी ने झट किवाड़ बन्द कर दिये।

रत्ना बिस्तर पर लेटी सोने का अभिनय कर रही थी। किवाड़ बन्द होते ही क्षण-भर के लिए वह साँस रोके पड़ी रही और आँखें खोलकर प्यानो पर रखे उस गुलदस्ते की ओर देखने लगी जिसे सेठजी प्रेमोपहार के रूप में उसके लिए छोड़ गए थे। जब नीचे मोटर-कार स्टार्ट होने की आवाज़ आई तो वह बिस्तर से उठी और प्यानो के ऊपर रखे गुलदस्ते को सूंघने लगी···फिर मुस्कराकर उसे एक ओर रख दिया। रोज़ी किवाड़ बन्द करके मालकिन के पास आ खड़ी हुई थी। रत्ना ने उसे संकेत द्वारा गुलदस्ते के साथ रखी डिबिया खोलने को कहा। डिबिया में कानों की बालियों का एक सुन्दर जोड़ा था। रत्ना ने मुस्कराकर बिना उन्हें छुए असावधानी से कहा—

"जा···इस डिबिया को मेरी अलमारी में रख दे···और देख, जल्दी खाना ले आ।"

रोज़ी डिबिया उठाकर दूसरे कमरे में चली गई और रत्ना फिर बाहर बाल्कनी में आ ठहरी···वही मौन···वही फैला हुआ विशाल सागर···वही दूर तक बम्बई की बिजलियाँ···और संगमरमर की शीतल तिपाई···ऐसा एकान्त उसे सदा आत्म-विश्लेषण की ओर खींचता। वह अपने अन्दर में झाँकने लगी···सेठजी का विचार आते ही उसके होंठों पर एक हल्की-सी मुस्कान उभर आई···वह मुस्कान जो किसी का रहस्य जान लेने पर स्वयं ही उत्पन्न होती है। सेठजी उसे चाहते थे···उसके लिए निशदिन नित नये बहुमूल्य उपहार लेकर आते···वह सुलझे हुए सुन्दर प्यार के कई वाक्य याद करके आते और रत्ना को प्रभावित करने का प्रयत्न करते। रत्ना यह सब सुनती और मुस्करा देती···और यह रहस्यमय मौन-मुस्कराहट उन्हें और तड़पा देती। वह सेठजी की भावनाओं को भली प्रकार समझती थी; किन्तु उन पर वह सदा यही प्रगट करने का प्रयत्न करती कि वह प्रेम के गूढ़ रहस्य को समझने योग्य नहीं। सेठजी को कौन समझाता कि स्वयं उसका अपना मन अपना नहीं, वह तो वर्षों से स्वयं इसी प्रेम की ज्वाला में जल रही थी।

प्रकाश जब अपने घर पहुँचा तो साढ़े ग्यारह बज चुके थे। सोने के कमरे की बत्ती को छोड़कर शेष सब घर में अँधेरा था। उसने सीढ़ियों में उजाला करना उचित न समझा और ऊपर आ गया। जमना स्पष्टतः सो रही थी; किन्तु उसकी बन्द पलकों से कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि वह वैसे तो जाग रही है। साथ ही अलग छोटी चारपाई पर लक्ष्मी सो रही थी। प्रकाश चुपके से उसके निकट आया और हाथ में थमा हुआ बिस्कुट का पैकिट उसके सिरहाने रख दिया। वह सदा घर से चलते समय उसके लिए बिस्कुट लाने का वायदा करता; किन्तु शाम को लौटते समय भूल जाता।

आज वह उसे प्रसन्न करने के लिए उसकी मन-भाती वस्तु लेता ही आया था।

लक्ष्मी से दृष्टि हटाकर उसने जमना को देखा। चिन्ता और भ्रम में जलती-फुँकती वह प्रतिदिन ढलती जा रही थी। उसके मुख की कांति लुप्त हो गई थी। प्रयन्त करने पर भी प्रकाश उसे प्रसन्न न रख सकता था। उसे देखकर वह स्वयं भी उदास हो जाता; किन्तु वह विवश था। जमना उसकी पत्नी थी, उसके लिए वह मन में भरपूर सहानुभूति रखता था; किन्तु वह उसे वह प्रेम न दे सकता था जो जमना की आत्मा की भूख थी। आज भी वह प्रतिदिन की भाँति देर से आया था और उसने शराब भी पी रखी थी। वह चुपके से जमना के समीप गया और धीरे-से उसके माथे को स्पर्श करते बोला—

"जमना !"

जमना उस का स्वर सुनते ही जाग उठी। उसने उनींदी आँखों से पति को देखा। शराब की दुर्गन्ध से नाक सुकोड़कर मुँह फेर लिया। अपनी मानसिक दुर्बलता का भान करके प्रकाश उसके पास ही बैठ गया। जमना सटपटा कर यूँ उछली जैसे उसे विजली का तार छू गया हो और त्योरी चढ़ाती हुई रसोईघर में चली गई। प्रकाश कपड़े बदलने लगा।

खाने की थाली मेज़ पर रखकर जमना फिर पँलग पर जा लेटी। प्रकाश खाने के लिए बैठते उससे बोला—

"तुमने खा लिया है क्या ?" जमना ने कटु स्वर में उत्तर दिया।

"नहीं !"

"तो आओ, लेट क्यूँ रही हो ?"

"मुझे नहीं खाना।" वह बड़बड़ाई।

"क्यूँ ?"

"भूख नहीं।"

प्रकाश ने जमना के इस उत्तर से उसके मानसिक असंतुलन का

अनुमान लगाया और खाना छोड़कर उसके पास आ बैठा। जमना ने मुँह फेर लिया। प्रकाश ने उसका मुँह अपनी ओर करते हुए विनम्र कहा, "आओ! अब हठ छोड़ो।"

"कहा न! मुझे नहीं खाना।" जमना ने क्रोध में उसका हाथ झटकाते हुए कहा।

"किन्तु मुझे तो खाना है, जानती हो कि इस खाने के लिए तो आज मैंने रत्ना के घर खाने को नाहीं कर दी।"

रत्ना का नाम सुनते ही जमना के सीने पर साँप लोट गया। वह पहले ही से उसके नाम से जली-भुनी थी। अब यह सुनकर कि प्रकाश वहीं से आया है, उसके तन-वदन में आग लग गई। पैनी दृष्टि से उसने प्रकाश को देखा और बोली—

"मैं जानती थी कि आप वहीं होंगे।"

"शायद कुछ देर और रुकता; किन्तु जब रत्ना ने जाना कि तुम खाने के लिए मेरी प्रतीक्षा में बैठी रहोगी, तो उसने मुझे तुरन्त लौटने को कहा।"

"तो आप उसीकी आज्ञा से आये हैं?"

"हूँ...."

"ओह......आप अब उसकी आज्ञा भी मानने लगे, वह बिस्तर पर घुटने जोड़कर बैठ गई।

"हाँ, मेरा आशय है कि वह कितना ध्यान रखती है तुम्हारा!"

"बड़ी सहानुभूति है उसे मुझसे......और फिर उसकी भलाई भी तो इसीमें है।"

"क्यूं?" वह खाने की मेज़ पर बैठते बोला।

"वह जानती है कि आप दो नावों में सवार हैं। एक भी डग-मगाई तो हानि उसीकी है।"

"मैं समझा नहीं।"

यह सुनते ही रत्ना बिस्तर छोड़ उसके पास आ गई और व्यंग-

पूर्वक बोली—"आप भोले जो ठहरे। स्त्रियों की बातें ज़रा समझ में कम आती हैं···बड़ी चतुर होती हैं वह और समयानुकूल भी···छल और कपट में उन्हें जीता नहीं जा सकता···अर्थात् वह अपना स्वार्थ चाहती है और मैं अपना।"

"जमना! यह तुम क्या कह रही हो?"

"सीधी-सी बात···किन्तु; आपकी बुद्धि से दूर।"

"क्या?" प्रकाश ने माथे का पसीना पोंछा।

"प्रेम और ऐश्वर्य के लिए उसका घर, और झंझट-भरी गृहस्थी के लिए मेरा घर।"

"जमना!" प्रकाश आवेश में चिल्लाया।

उसकी बात सुने बिना ही जमना फिर बोली—"यदि रत्ना आपको साथ बिठाकर शराब पिला सकती है, तो रोटी के टुकड़ों के लिए यहाँ क्यों भेजती है?"

पत्नी की बात सुनकर प्रकाश तिलमिला उठा। क्रोध में उसने खाने की थाली ज़ोर से धकेल दी। थाली गिर गई और सारा खाना बिखर गया। थाली गिरने से एक धमाका हुआ और जमना काँप गई। प्रकाश लम्बे डग भरता दूसरे कमरे में चला गया। जमना उठी और धरती पर गिरे भोजन को समेटने लगी। उसमें इतना बल न था कि वह प्रकाश का सामना करे। बड़ी देर तक कमरे में मौन छाया रहा, जिसे प्रकाश के कमरे से आती प्यानो की ध्वनि ने तोड़ा।

दूसरे दिन जब प्रकाश स्टूडियो पहुँचा तो ग़ज़ल का मुखड़ा और गाने की धुनि तैयार थी। म्यूज़िक-रूम में धुन सुनने पर कवि सुधाकर भी वाह-वाह कर उठे। सेठजी व रत्ना भी वहीं थे। प्रकाश ने रत्ना की छिपी मुस्कान को भाँपा और बोला—

"धुन तो मेरी है; पर मुखड़ा चोरी का। शेर कहीं से लिया है।"

"कहाँ से?" सेठजी पूछ बैठे। रत्ना ने एक रहस्यमयी दृष्टि प्रकाश पर डाली। प्रकाश ने मुस्कराते हुए कहा—

"मुहब्बत की आग में सुलगती हुई एक नाज़नीना के होंठों से।"

प्रकाश के इस उत्तर पर सब हँस पड़े। रत्ना चुप रही और आँखें नीचे झुकाकर कुछ सोचने लगी। शायद वह प्रकाश के इस वाक्य को मन-ही-मन तौल रही थी।

कवि सुधाकर ने इन्हीं पंक्तियों के आधार पर गीत के शेष बोल लिखे, और दो ही दिन में यह संगीत की कलाकृति तैयार हो गई। सबको पूर्ण विश्वास था कि फ़िल्म तैयार होते ही यह गीत सबके होंठों पर होगा। इस गीत की धुन में एक ऐसी समवेदना और ऐसी अछूती कोमलता थी कि सुनने वाले के मनोमस्तिष्क को बाँध लेती थी। इसमें छिपी पीड़ा का अनुमान कौन लगा सकता था!

फ़िल्म में वर्फ़ का दृश्य लेने के लिए यूनिट को शूटिंग के लिए शिमला जाना था। रत्ना का होना तो आवश्यक था ही; सेठजी के आग्रह पर प्रकाश का साथ चलना भी निश्चित हुआ। वास्तव में रत्ना आऊट-डोर शूटिंग में प्रकाश के संग बिना कहीं न जाती। जमना ने जब यह सुना तो किसी शंका से उसका मन बैठने लगा; किन्तु वह कह न सकी। प्रकाश ने उसे चिन्तित देखकर अपने साथ चलने को कहा...उसने सोचा, ऋतु-परिवर्तन से उसके स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा, परन्तु जमना ने इन्कार कर दिया। वह चला गया और पीछे जमना को कुढ़ने के लिए छोड़ गया।

बम्बई में हाजीअली का मज़ार एक मशहूर स्थान है। कहा जाता है कि सच्चे मन से माँगी हुई हर मन्नत यहाँ पर पूर्ण हो जाती है। जमना ने भी हाजीजी के चमत्कारों के विषय कई स्त्रियों से सुन रखा था। यह मज़ार समुद्र के घिरे हुए एक छोटे-से टापू पर था। प्रकाश के शिमला चले जाने के दूसरे दिन महालक्ष्मी के मन्दिर से लौटते समय जमना ने ड्राइवर को गाड़ी उधर ले चलने को कहा। गाड़ी को पुल के पास रुकवाकर उसने अपने मन की शंका निवारण करने के लिए पूछा—

"क्या इस मज़ार पर मुसलमानों के अतिरिक्त दूसरी जातियों के

व्यक्ति भी जाते हैं ?"

"क्यों नहीं···यहाँ किसीको जाने की मनाही नहीं···और फिर हाज़ी मरहूम तो सबकी मुरादें पूरी करते हैं ।"

"तो तुम यहीं ठहरो···मैं इसे देखकर आती हूँ ।" जमना ने यह कहा और गाड़ी से उतर गई । ड्राइवर आश्चर्य में खड़ा उसे देखता रहा··· वह सोचने लगा, यह एकाएक मालकिन को हाजीअली के मज़ार में जाने की क्या सूझी···वह तो बड़े रूढ़ि विचारों की कट्टर हिन्दू स्त्री थी ।

मज़ार के मुख्य द्वार से जमना ने फूलों की एक माला और एक दोने में खुले फूल लिये और उस सड़क पर चलने लगी जो मज़ार में जाती थी । आस-पास आते-जाते लोगों को देखती वह मज़ार तक जा पहुँची और फूलों की माला और दोना मुजावर के हाथ में देकर उसने बताशों का प्रसाद लिया । कई स्त्रियाँ और पुरुष अपनी मन्नतें माँग कर मज़ार की परिक्रमा कर रहे थे । जमना ने भी अपने सुहाग की रक्षा की मन्नत माँगते हुए हाज़ीअली से प्रार्थना की कि प्रकाश सदैव उसीका बना रहे और कोई पर-स्त्री उस पर जादू न चला सके । यह प्रार्थना करके उसने भी तीन बार मज़ार की परिक्रमा की । वापस लौटने को ही थी कि अचानक अपनी ओर एकटक देखती हुई एक फ़ैशनेबल स्त्री को देखकर ठिठक गई । दोनों की दृष्टि मिली और जमना झेंपकर बाहर निकल आई । वह स्त्री भी उसके पीछे-पीछे बाहर आई और दो-एक पग चलकर बोली—

"सुनिये···"

जमना रुक गई और पलटकर उसे देखने लगी ।

"ऐसा जान पड़ता है आपको कहीं देखा है ।" वह स्त्री पास आते बोली ।

"सोच तो मैं भी यही रही थी···किन्तु···"

"आपका फ़िल्मी जगत् से तो कोई सम्बन्ध नहीं ?"

"जी···मेरे पति फ़िल्मों में काम करते हैं ।"

"कैसा काम ?"

"वह एक संगीतकार हैं ।"

"ओह ! ···समझी · आप प्रकाशजी के घर···"

"जी···आपने ठीक पहचाना···" जमना ने उसे निहारते हुए कहा ।

"वह स्त्री मुस्करा दीं और बोली—"मेरा नाम लता है···बम्बई मूवीटोन की स्टंट फ़िल्मों की हीरोइन···एक-दो बार आपको फ़िल्मी पार्टियों में उनके साथ देखा है ।"

दोनों बातें करती हुई द्वार की ओर चलीं—

"क्या आपको इस मज़ार पर विश्वास है ?···कोई मन्नत···"

"नहीं तो···यूँही देखने चली आई ।" जमना ने झट बात बदली ।

"ओह·· मैं समझी, कोई मुराद माँगने आई हैं ?"

"आपने क्या माँगा ?" जमना ने पूछा ।

"जो माँगा है उसे कहा नहीं जाता···अभिलाषा पूरी हो गई तो बताऊँगी ।"

"आपको विश्वास है···यहाँ मन की इच्छाएं पूरी हो जाती हैं ।"

"जी···आप भी परीक्षा कर देखिये···चलिये···" लता ने रुकते हुए कहा ।

"धन्यवाद···माँग लिया मैंने भी जो-कुछ माँगना था ।"

"क्या ?"

"जो माँगा है उसे कहा नहीं जाता···अभिलाषा पूरी हो गई तो बताऊँगी ।" जमना ने लता की बात दुहराई और दोनों हँसने लगीं ।

दोनों अपने मन का रहस्य छिपाये बाहर आ गईं···दोनों दुखी थीं और इस बात से अनभिज्ञ कि दोनों का उद्देश्य एक था···दोनों का प्रश्न एक था···रत्ना ! एक अपने सुहाग की रक्षा के लिए उससे छुटकारा चाहती थी और दूसरी फ़िल्मों में उसकी सफलता से जलकर इस काँटे को निकालने की इच्छुक थी ।

किन्तु किसीका बुरा चाहने से क्या होता है''''''रत्ना सफलता के उत्कर्ष पर चढ़ती गई'''उसका नाम प्रतिदिन ऊँचा होता चला गया। उसकी हर फ़िल्म एक सीढ़ी होती जो उसे ऊपर ही ले जाती'''प्रकाश के कारण रत्ना और रत्ना के कारण प्रकाश'''एक संगीत की धुनें बनाता और दूसरा उसे स्वर देता'''और दोनों चमकते गये'''फ़िल्मी गगन के तारे।

शिमला में शूटिंग समाप्त हो चुकी थी। बर्फ़ के अति सुन्दर दृश्य लिये गये। प्रकाश की धुन पर रत्ना का गाना भी रिकार्ड हो चुका था'''सब संसार को भूलकर उन्होंने एक-दूसरे के हृदय की धड़कनें सुनीं और उसमें खो गये। यह फ़िल्म सेठजी ने स्वयं डायरेक्ट की थी और उनके साथ पूरा यूनिट बम्बई वापस लौट रहा था।

आने से पूर्व एक दिन अकस्मात् एक बर्फ़ीली चट्टान पर चढ़ते हुए रत्ना फिसल गई जिससे उसके पाँव में चोट आ गई। डाक्टर ने उसे चलने-फिरने की मनाही कर दी और कुछ दिन वहीं रुककर उसे विश्राम करने का परामर्श दिया। पूरा यूनिट तो उसके कारण रुक न सकता था, सो सेठजी ने विवशतः प्रकाश को वहाँ छोड़ दिया। उन्हें इस बात का दुःख था कि रत्ना उनके संग नहीं जा रही; किन्तु वह कर भी क्या सकते थे।

रत्ना जानती थी कि यूनिट के साथ प्रकाश के बम्बई न पहुँचने पर जमना पर क्या बीतेगी; किन्तु यदि वह सेठजी से प्रार्थना करके प्रकाश को वहाँ न रोक लेती तो सम्भवतः सेठजी स्वयं वहाँ रुक जाते। और यह रत्ना को किसी प्रकार भी स्वीकार न था। इस वातावरण में घर से इतनी दूर वह किसी पर-पुरुष के साथ न रहना चाहती थी।

प्रकाश को यह स्वर्ण अवसर भगवान ने दिया। शिमला के वातावरण में वैसे भी उसे मानसिक शांति मिली थी'''यह पर्वत, यह मोहक दृश्य'''यह मन का मीत'''सहयात्री। उसने सोचा कि भगवान ने उसे अनजाने ही मुँह-माँगा वरदान दे दिया है। बम्बई के दूषित वातावरण

से दूर, इन वादियों में वह अपने खोये सुख और शांति को प्राप्त करना चाहता था ।

उनका होटल एक अकेली सुन्दर टेकरी पर स्थित था। होटल के विशाल भवन की चोटी मानों आकाश से बातें करती । इस समय भी होटल की सबसे ऊपरी मंज़िल पर बैठे, वह बर्फ़ से ढकी पहाड़ियों को देख रहे थे। दूर तक एक सफ़ेद चादर-सी बिछी थी। पेड़ों के पत्तों और टहनियों पर पड़ी हुई बर्फ़ यूँ लगती थी, जैसे चाँदनी साकार हो यहाँ ठहर गई हो। दोनों किसी विचार में खोये हुए थे। एकाएक रत्ना ने मौन भंग किया—

"क्या सोच रहे हो ?"

"बहुत दूर की बातें !"

"हम भी तो सुनें ।"

"कही नहीं जा सकतीं ।"

"ओह !···समझ गई···"

"क्या ?" प्रकाश ने झट पूछा।

"आपके दिल की बात······जमना की याद आ रही है न !" रत्ना ने प्रकाश के मुख पर दृष्टि गड़ाये पूछा।

पत्नी का नाम सुनते ही प्रकाश का मुख गम्भीर हो गया। फिर क्षण-भर चुप रहकर बोला—"हाँ ! उसीकी याद आ रही है।"

प्रकाश ने एक निःश्वास खींचा और अपने प्याले से चाय पीने लगा। रत्ना मुस्कराकर फिर बाहर का दृश्य देखने लगी। कुछ क्षण दोनों चुप रहकर धीरे-धीरे चाय पीते रहे।

"क्या सोच रही हो ?" चाय का प्याला मेज़ पर रखते हुए प्रकाश ने प्रश्न किया।

"इन चट्टानों की बात।"

"क्या ?"

"बर्फ़ ने ढककर इन्हें ऊपर से कितना सर्द बना रखा है। किन्तु

इनकी अन्दरूनी जलन का अन्दाज़ा कौन लगा सकता है।"

"यह क्या मुश्किल है ?"

"तो बताइये···"

"इनकी हालत ठीक तुम्हारी तरह है, ऊपर से सर्द और संजीदा, अन्दर से मुहब्बत की बेपनाह गर्मी। अरमान राख बनते जा रहे हैं, पर चेहरे पर शिकन नहीं···।"

"प्रकाश !" रत्ना के होंठ थर्रा गये। प्रकाश की इस उपमा ने उसकी मनोदशा को नग्न कर दिया था। प्रकाश ने देखा इस शीत में भी रत्ना के मुख पर पसीना झलक आया था। उसके काँपते होंठ कुछ कहना चाहते थे; किन्तु कह न सकते थे। प्रकाश बिलकुल उसके समीप आ गया था और उसके नयनों में झाँककर उसकी थाह में कुछ खोजने लगा। रत्ना की साँस उसके मस्तिष्क को स्पर्श कर रही थी। वह धीरे से बोला—

"हाँ रत्ना ! कह दो कि तुम्दारे दिल की यह कैफ़ियत नहीं······ कह दो कि वह एक मुद्दत से उसकी याद में नहीं जल रहा जिसे तुम अपना नहीं सकतीं···वह तुम्हारे करीब है···बहुत करीब···तुम खुद तड़प लेती हो · पर उस पर अपना दर्द ज़ाहिर नहीं होने देतीं।"

रत्ना उसके इन शब्दों से विचलित होकर चिल्लाई, "नहीं···नहीं··· यह झूठ है।" उसके होंठ काँप रहे थे। वह खड़ी हो गई। प्रकाश ने उसे अपने बाज़ुओं का सहारा दिया और अपने आलिंगन में कस लिया। उसके होंठ उसके सर्द होंठों से मिले।

क्षण-भर अपने को अर्पण करके रत्ना उससे अलग होने के लिए छटपटाई और इसी खींचा-तानी में उसका वह पाँव जिसमें उसे चोट आई थी, प्रकाश के पाँव से जा टकराया। वह पीड़ा से कराह उठी। प्रकाश ने उसे छोड़ दिया और वह पाँव को पकड़े वहीं बैठ गई। पीड़ा असहनीय थी। कुछ देर प्रकाश चुपचाप खड़ा उसे देखता रहा और फिर अँगीठी से 'आयोडेक्स' की शीशी लाकर उस पाँव पर मलने लगा।

रत्ना ने उसका हाथ रोक दिया, और बोली—"यह आप क्या कर रहे हैं ?"

"डाक्टर ने कहा था कि दर्द बढ़ जाये तो इसकी मालिश कर देना।"

"लाइये मैं खुद लगा लूँगी।"

"तुमसे यह न होगा।"

"तो नौकरानी को बुलवा लीजिये।"

"लेकिन क्यूँ ? मैं जो हूँ !"

"आप...नहीं...यह मुमकिन नहीं।"

"क्या हर्ज है इसमें ?"

"आप...और मेरे पाँव छूएँ...यह मुझसे बरदाश्त न होगा।"

"इसलिए कि मेरे हाथ सख्त हैं ?"

"नहीं...एक उस्ताद अपने शागिर्द के पाँव छूए...अच्छा नहीं लगता;" रत्ना ने नम्रता से कहा।

प्रकाश ने उसकी संकोच-भरी आँखों में झाँका और झट उसका पाँव हाथों में ले लिया। रत्ना ने तिलमिलाकर पाँव खींचना चाहा; किन्तु प्रकाश ने बलपूर्वक उसका पाँव थामे रखा और मरहम लगाने लगा। रत्ना ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढाँप लिया।

"कौन उस्ताद और कौन शागिर्द ? अब हमारा यह रिश्ता नहीं... यह तो सुर और साज का सम्बन्ध है, जो बराबर का है और टूट नहीं सकता," प्रकाश ने कहा।

रत्ना ने मुँह से हाथ हटा लिये और प्रेम-भरी दृष्टि से प्रकाश को देखते हुए बोली—"अगर यह टूट गया तो......" उसके स्वर में एक भोलापन था।

तो...दोनों की मौत...," प्रकाश ने कहा और ज़ोर-ज़ोर से उसके पाँव मलने लगा। रत्ना जड़वत् उसे देखती रही...शायद अब वह उसके अन्तस्तल को पढ़ रही थी।

तेरह

"सुना आपने !"

"क्या ?" प्रकाश ने रत्ना की ओर देखते हुए पूछा ।

"कलकत्ता के मॉडर्न-थियेटर का मशहूर गवैया हमारी कम्पनी में आ रहा है ।"

"ओह...कुन्दन !"

"जी..." रत्ना ने उत्तर दिया और रुककर पूछा," किसी फ़िल्म में काम करेगा क्या ?"

"हाँ...अपनी नई फ़िल्म में...मैंने ही बुलवाया है ।"

रत्ना प्रकाश का उत्तर सुनकर चुप हो गई और उसके पास बाल्कनी पर आ गई । प्रकाश आरामकुर्सी पर बैठा हुआ एक फ़िल्म की हस्तलिपि पढ़ रहा था । रत्ना को पास आते देखकर वह बोला—

"हम 'तानसेन' को फ़िल्माने की सोच रहे हैं ।"

"यह कहानी उसीकी है ?" रत्ना ने पूछा ।

"हूँ......सेठ खुद इसे डायरेक्ट कर रहे हैं ।"

"तानसेन का रोल मिस्टर कुन्दन कर रहे होंगे ?" रत्ना ने उत्सुकता प्रगट करते हुए फिर पूछा ।

"हाँ...और तानी का रोल तुम ?"

"मैं ?" रत्ना ने पूछा, "यह तानी कौन ?"

"तानसेन की महबूबा...लिखने वाले ने दोनों का रोल खूब ही लिखा है ।" प्रकाश हस्तलिपि को मेज पर रखते हुए उठकर मुंडेर के पास आ

खड़ा हुआ और समुद्र की लहरों को देखने लगा । वह मन-ही-मन तानसेन के लिए गानों की स्थिति और धुनों पर विचार करने लगा ।

"मैं तानी का रोल न कर सकूँगी ।"

रत्ना के इस वाक्य ने प्रकाश की विचार-धारा को एकाएक भंग कर दिया और झट मुड़ते हुए उसने पूछा—

क्यों ?"

"मैं इस रोल के लिए मौजूँ नहीं ।"

"यह तुमसे किसने कहा ?"

"मेरे दिल ने ?"

"लेकिन हीरे की परख तो जौहरी जानता है'''हीरा खुद नहीं ।"

"देखिये'''" उसने प्रार्थना-भरी दृष्टि से प्रकाश की ओर देखा । प्रकाश उसके साथ आ खड़ा हुआ ।

"आप मुझे उसके साथ न रखिये'''वह वड़ा'''"

"तुम्हारा ख़ौफ़ वेकार है'''वह एक हमदर्द आर्टिस्ट है ।"

"होगा'''लेकिन इससे आप इन्कार नहीं कर सकते कि वह पूरी फ़िल्म पर छा जाता है'''हर दूसरा आर्टिस्ट उसके सामने हेच नज़र आता है ।"

"ओह'''हम समझे'''हमारी हीरोइन इस बात से डर रही है कि कहीं आफ़ताब हमारे चाँद को ग्रहण न लगा दे ।" प्रकाश मुस्कराते हुए बोला ।

"या आपका चाँद आफ़ताब की रोशनी में इतना मद्धिम पड़ जाये''' इतना वेरंग हो जाये कि दुनियाँ उसकी हस्ती को ही भूल जाये ।" रत्ना ने गम्भीर मुद्रा में उत्तर दिया ।

"हमारा वादा रहा'''हम उस आफ़ताव को अपने मेहताव पर छाने न देंगे ।"

"तो एक बात मानिये'''"

"क्या ?"

"फ़िल्म में मेरा काम हो···गाना न रखियेगा ।"

"यह नामुमकिन है···इसमें खास रोल गाने का ही तो है।"

"तो मेरा उस आफ़ताव के सामने आकर अपने-आपको हकीर साबित करना भी मुमकिन नहीं।" रत्ना ने दृढ़ स्वर में कहा ।

रत्ना···!"

"हूँ···"।

"यह सच है कि आजतक जिस हीरोइन ने भी कुन्दन के सामने गाना गाया एक मामूली गाने वाली बनकर रह गई।"

"इसीलिये तो मैं कहती हूँ आप······"

"तुम खौफ़ न करो···" प्रकाश ने रत्ना की बात काट दी और रत्ना के माथे पर आई लट को हटाते हुए बोला, "अबकी बार यह चाँद उस आफ़ताब को मद्धिम कर देगा।"

"प्रकाशजी···" उसके होंठ थरथराये ।

"हाँ रत्ना···मुझपर भरोसा रखो, यह तुम्हारा नहीं मेरा इम्तिहान है। मैं जानता हूँ आवाज़ बहुत बड़ी चीज है, लेकिन उसे उठान तो साज़ से ही मिलता है। फिर तुम्हारी आवाज़ किससे कम है!"

यह कहते हुए प्रकाश की आँखों में एक चमक-सी उत्पन्न हुई। इस चमक की झलक रत्ना की आँखों में भी थी। दोनों बड़ी देर तक चुपचाप दूर तक फैले समुद्र की लहरों की हलचल देखते रहे···इस हलचल में जीवन और प्रेम दोनों का रहस्य था। लहरों की हलचल उनके अपनी मनोदशा की प्रतीक थी।

दो दिन बाद कुन्दन भी कलकत्ता से आ गया। सेठजी, रत्ना और प्रकाश उसके स्वागत के लिए हवाई अड्डे पर गये। प्रकाश और कुन्दन गले मिले और एक-दूसरे को बधाई देने लगे। रत्ना से भेंट करते हुए कुन्दन ने उसके स्वर को सराहा। इस महान् गायक के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर रत्ना मन-ही-मन प्रफुल्लित हुई।

अगले दिन शाम को सेठजी ने कुन्दन के सम्मान में एक महान्

पार्टी दी। इस प्रसिद्ध गवैये को देखने के लिए बम्बई फ़िल्म-क्षेत्र का कोई ही व्यक्ति होगा जो न आया होगा। जमना भी वहाँ उपस्थित थी। कुन्दन उससे मिलकर अति प्रसन्न हुआ।

आमन्त्रित व्यक्तियों में लता भी थी। जमना उसे देखकर उसकी ओर बढ़ी और दोनों आपस में वातें करने लगीं। प्रकाश को उनकी यह भेंट कुछ-विचित्र-सी लगी। जब वह अपनी सीट पर वापिस लौटी तो प्रकाश ने पूछा, "जानती हो यह कौन है ?"

"हूँ, आपकी कम्पनी की एक हीरोइन।"

"तुम्हारी जान-पहचान कब हुई ?"

"पुरानी है।"

प्रकाश यह उत्तर सुनकर चुप हो गया। इसी समय रत्ना उसके समीप आई और जमना को नमस्कार करके आगे बढ़ गई। जमना ने शंकित दृष्टि से उसे देखा और कुछ देर प्रकाश के पास रुककर फिर जाने लगी।

"कहाँ चलीं !" प्रकाश ने उसे रोकते हुए पूछा।

"ज़रा लता के पास।"

"देखो जमना, ऐसी औरतों से मेल-जोल बढ़ाना अच्छा नहीं।"

"क्यूं ?" होंठ दबाते हुए उसने पूछा।

"वह चाल-चलन की अच्छी नहीं।"

"तो आप रत्ना को क्यूं मुंह लगाते हैं ? वह भी तो इन्हींमें से है···ऐसी ही ऐक्ट्रेस···;" जमना ने व्यंगात्मक ढंग से कहा और कन्धे झटकाते हुए चल दी। प्रकाश वहीं खड़ा-का-खड़ा देखता रह गया। वह पत्नी के इस प्रश्न का उत्तर न दे सकता था···वह एक विषैला नश्तर उसे चुभो गई थी।

'तानसेन' चित्र का कार्य आरम्भ हो गया। प्रकाश गीतों की धुनें बनाने में व्यस्त था और सेठजी कम्पनी के दो और निर्देशकों की सहायता से फ़िल्म की शूटिंग करने लगे। रत्ना और कुन्दन तन-मन से अपना रोल

निभाने के लिए जुट गये। जो झिझक मन-ही-मन रत्ना कुन्दन के साथ काम करने में अनुभव कर रही थी, वह शीघ्र ही समाप्त हो गई। कुन्दन एक सुन्दर-हृदय और कोमल-स्वभाव का कलाकार था। इससे पूर्व रत्ना ने आज तक ऐसे कोमल-हृदय व्यक्ति के साथ काम न किया था। फ़िल्म-हीरो होने पर भी उसमें बड़प्पन की बू तनिक भी न थी; किन्तु जहाँ तक गाने का प्रश्न था, इस कला में उससे होड़ लेने वाला कोई न था। ध्वनि उसके कंठ से यूँ निकलती, मानो प्रकृति ने उसके कंठ में साज़ रख दिया हो जो स्वयं ही साँसों के साथ बज रहा हो। उसका सर्वस्व उसका स्वर ही था। बड़े-बड़े संगीत-विशेषज्ञ भी उससे विवाद करने में झिझकते थे। रत्ना को यह भय था कि कहीं प्रकाश उसके स्वर को उठाने के लिए 'तानसेन' के संगीत को गिरा न दे। कहीं वह 'व्यक्ति' के कारण कला को हानि न पहुँचाये।

गीत तैयार हो गये और धुनें बन गईं। सबसे प्रथम चित्र का सबसे कठिन राग दीपक-राग रिकार्ड होना निश्चित हुआ। इस राग का अभ्यास करवाते, प्रकाश ने कुन्दन को थका दिया था; किन्तु फिर भी रिकार्डिंग के समय वह प्रसन्न न हुआ। प्रकाश की इच्छानुसार गाना न गाया जा सका। सो उसने पूरे गाने को अस्वीकार करके इसे पुनः रिकार्ड करने की ठानी। कुन्दन इस पक्ष में न था और सेठजी भी उसीका समर्थन कर रहे थे; किन्तु प्रकाश अपने हठ पर दृढ़ था और उसने वह गाना खंडित(scrap)कर दिया।

यद्यपि, कुन्दन प्रकाश का गूढ़ मित्र था, तथापि उससे यह सहन न हुआ कि प्रकाश एक नई कम्पनी में सबके सम्मुख उसे ग़लत प्रमाणित करे। भावावेश में उसने प्रकाश को भला-बुरा कह दिया और इस राग को पुनः गाने से इन्कार कर दिया। प्रकाश ने उसे छोड़ सबको म्यू-ज़िक-रूम से बाहर चले जाने की प्रार्थना की। कुन्दन भी क्रोध में बाहर जाने को उठ खड़ा हुआ। प्रकाश ने उसे रोकते हुए कहा—

"क्या आप भी जा रहे हैं ?"

"जी······फ़रमाइये !"

"क्य आप यह गाना दोबारा न गायेंगे ?"

"नहीं······मुझे अपनी आवाज पर भरोसा है !"

"और मुझे अपने साज़ पर······अपनी धुनों पर······"

"तो आप किसी नई आवाज़ का सहारा लीजिये ;" यह कहकर क्रोध में भरा कुन्दन बाहर जाने लगा। प्रकाश लपककर सामने आ गया और उसके कंधे पर दोनों हाथ रखते बोला—

"कुन्दन !"

"हूँ······"

"यह मत भूलो कि तुम्हें यहाँ लाने में मेरा ही हाथ है।"

"अच्छा ही होता कि तुमने मुझ पर यह अहसान न किया होता।"

"क्यों ?"

"हमारी मित्रता में यह रुकावट तो न आती।"

"इसे पैदा करने वाले तुम ही तो हो···मैं तुम्हारी ज़िद के लिए एक पूरी फ़िल्म बरबाद कर दूँ ?"

"हो सकता है तुम्हारे साज़ ही इस नाकामयाबी का कारण हों। मुझे अपनी आवाज़ पर पूरा भरोसा है।"

"कुन्दन ! एक बात कहूँ बुरा तो न मानोगे ?"

"क्या ?" वह झुँझलाते हुए बोला।

"माना कि तुम आज हिन्दुस्तान के ही नहीं, एशिया के भी एक प्रसिद्ध गायक हो······और मैं एक मामूली संगीतकार···"

"तो··· ······?"

"तो···मैं जानता हूँ कि यह गुमान करके तुम एक भूल कर रहे हो। अपनी आवाज़ के बल पर तुम 'सुर' को पीछे छोड़ रहे हो। यह तानसेन का दीपक-राग तो तुम नहीं गा सकते—नहीं, तुम इस काबिल ही नहीं।"

कुन्दन प्रकाश की बात से जल-भुन गया और लम्बे डग उठाता म्यूज़िक-रूम से बाहर चला गया। रत्ना व सेठजी और दूसरे साज़िन्दे बाहर खड़े थे। कुन्दन तीव्र-गति से उनके सामने से चला गया। सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। सेठजी ने चिन्तित हो कुन्दन का जाना देखा और रत्ना को, ले म्यूज़िक-रूम में चले गये।

प्रकाश प्यानो पर बैठा कोई धुन बजा रहा था। सेठजी को देखते ही वह रुक गया। सेटजी घबराये-से उसकी ओर बढ़े और पूछा—

"क्या हुआ ?"

प्रकाश ने द्वार में खड़ी रत्ना से दृष्टि हटाते हुए उत्तर दिया—"कुन्दन ने दीपक-राग पुनः गाने से इन्कार कर दिया।"

"तो क्या होगा ?"

"'तानसेन' चित्र अधूरा रहेगा।"

"प्रकाशजी ! यह लाखों का मामला है। आप यह ज़िद क्यों नहीं छोड़ देते ?"

"सेठजी !" प्रकाश ने विनम्र कहा—"जबतक मेरी आत्मा न साथ दे मैं इसे मन्ज़ूर नहीं कर सकता।"

"यह तो एक जनून है।"

"कुछ ही समझिये...... दीपक-राग सुनने के बाद लोगों के दिलों में आग लगनी चाहिये......न कि उस पर्दे पर, जहाँ यह चित्र दिखाया जा रहा हो।" प्रकाश ने क्षुब्ध होकर कहा और कुन्दन की भाँति तेज़ पाँव उठाता हुआ बाहर चला गया।

समस्त फ़िल्म-जगत् में यह सूचना आग के समान फैल गई कि बम्बई मूवीटोन का गौरवपूर्ण चित्र 'तानसेन' हीरो और म्यूज़िक-डाइरेक्टर की झड़प के कारण अधूरा रह गया है। सेठजी को बड़ी चिन्ता-हुई। उन्होंने प्रकाश को रत्ना द्वारा और कुन्दन को राज द्वारा समझाने का बड़ा प्रयत्न किया; किन्तु वे दोनों अपने हठ पर अड़े रहे। जब उन पर अधिक बल डाला गया तो कुन्दन एक शर्त पर फिर गाने

के लिए तैयार हो गया और यह शर्त थी प्रकाश की हार···वह उसी धुन पर गायेगा जिसे वह अच्छा समझता हो···नई धुन पर नहीं ···बहुत सोच-विचार के बाद प्रकाश ने यह शर्त मान ली और कुन्दन फिर गाने को सहमत हो गया।

म्यूज़िक-रूम में प्रकाश प्यानो पर बैठा था और जला-भुना कुन्दन गाना रिकार्ड करवाने को उसके सामने खड़ा था। दोनों एक-दूसरे को उखड़ी-सी दृष्टि से देख रहे थे। साज़िन्दे साज़ की लय बाँधने में लगे थे। सेठजी ने हस्तलिपि के पन्ने उलटते हुए अपने माथे का पसीना पोंछा और फ़िल्म के उस दृश्य का वर्णन करने लगे जहाँ तानसेन को दीपक-राग गाना था। दृश्य बड़ा रोचक था। प्रकाश ने एक दृष्टि साज़िंदों को देखकर कुन्दन को संकेत किया कि दीपक-राग आरम्भ हुआ।

वही धुन थी···वही साज़ थे; किन्तु अबके कुन्दन की आवाज़ में एक नई पीड़ा···एक नई वेदना···एक अनोखी लोच थी। यूँ मालूम होता था जैसे यह आलाप उसके कण्ठ से नहीं, बल्कि मन से निकल रहा हो···चोट खाये हृदय से। कदाचित्, वह आज प्रकाश और सब दुनियाँ को दिखा देना चाहता था कि वास्तव में वह इस शताब्दी का तानसेन था, उसीका पुनरूप था।

गाना समाप्त हो गया और सेठजी ने कुन्दन से हाथ मिलाते हुए उसे बधाई दी। प्रकाश ने साज़िन्दों को बाहर जाने का संकेत किया। सेठजी भी हस्तलिपि लिये बाहर चले गये···रह गये दो कलाकार···मित्र ···एक-दूसरे से रुष्ट और मौन। कुछ देर बाद कुन्दन भी बाहर जाने लगा कि प्रकाश ने उठकर उसका मार्ग रोक लिया। दोनों की दृष्टि मिली और प्रकाश ने उसके पाँव छू लिये। कुन्दन स्तब्ध और लज्जित-सा रह गया; फिर दो पग पीछे हट गया। प्रकाश का ऐसा व्यवहार उसकी बुद्धि में न आ रहा था। अभी वह सोच भी न पाया था कि क्या कहे कि प्रकाश ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—

"कुन्दन ! मैं इस महान् कलाकार की कला को सलाम करता हूँ। मुझे इस बात पर नाज़ है कि तुम मेरे दोस्त हो। दुनियाँ देखेगी कि हमारे मुल्क में अब भी तानसेन मौजूद है।"

"मेरे मज़ाक का कोई नया ढंग निकाला है क्या ?"

"नहीं ! यह मज़ाक नहीं हक़ीकत है। मेरे जैसे कई संगीतकार मिलकर भी तुम-जैसा एक स्वर नहीं दे सकते। मुझे दुःख है, मैं तुमसे बुरी तरह पेश आया। इस गुस्ताखी में मैंने तुम्हारी आत्मा को भी कोस डाला। लेकिन मैंने यह सब-कुछ जान-बूझकर किया," प्रकाश बिना रुके ही एक साँस में सब कह गया।

"जान-बूझकर किसीको ज़लील किया जाता है क्या ?" कुन्दन ने चकित हो पूछा।

"हाँ···फ़न की ख़ातिर·· कला के लिए। तुमने वही चीज़ गाई··· ···वही धुन···वही आवाज़···पर ऐसा लगता था कि गाने वाले का जिगर फुँक गया हो···उसके दिल में लावा उबल रहा हो···जैसे कोई ग़ैबीताक़त उस आवाज़ में छिपी हो···और जानते हो यह सब क्यूँकर हुआ · तुम्हें ज़लील करने के बाद···न तुम गुस्से और कीना से उबलते और न यह नतीजा होता····'

"प्रकाश···!"

"हाँ, कुन्दन·· अब इस गाने को अपने कानों फ़िल्म में सुनना। मुझे यक़ीन है तुम्हारा दिल खुद ही जल उठेगा, इसी दीपक की तरह ।"

कुन्दन ने बढ़कर प्रकाश को गले लगा लिया। जब हाथों-में-हाथ डाले प्रसन्न-चित्त दोनों बाहर आये तो सेठजी और स्टूडियो के दूसरे व्यक्ति स्तब्ध रह गये कि यह क्या चमत्कार हो गया कि वह दोनों आपस में फिर मिल गये, और उसी गाने पर ही।

दीपक-राग फ़िल्माया गया और उसका रश-प्रिन्ट तैयार होकर छायापट पर लाया गया। पर्दे पर इसे देखकर सब चकित रह गये।

कुन्दन की आवाज़ में वह ज्वाला थी कि हर सुनने वाले के हृदय की गति तीव्र हो गई, रक्त का प्रवाह बढ़ गया। सबको विश्वास हो गया कि यह फ़िल्म कम्पनी के नाम को शिखर पर ले जायेगी। कुन्दन और तानसेन में कोई अन्तर न था। उसके अभिनय और आवाज़ की सबने सराहना की··· रत्ना ने भी···किन्तु; रत्ना के चेहरे से एक बात स्पष्ट थी कि कुन्दन के इस गाने ने उसके अपने छुटपन को उस पर प्रगट कर दिया था। उसे विश्वास-सा हुआ जा रहा था कि वह इस सूर्य के सम्मुख न रह सकेगी···उसके सामने गाकर उसका अस्तित्व मिट जायेगा···तुच्छ दिखाई देगा।

आज वह म्यूज़िक-रूम में प्रकाश के पास खड़ी उससे कुछ कहने को सोच रही थी; किन्तु उसे कहने का साहस न हो रहा था। उसे असमंजस में देखकर प्रकाश ने स्वयं ही बात छेड़ी—

"क्यों रत्ना! कैसा रहा?"

"क्या?" वह बनते बोली।

"दीपक-राग···"

'बहुत खूब···लोगों के दिल जलें या न जलें···लेकिन मेरा नाम ज़रूर जल जायेगा।"

"क्यों?"

"फ़िल्म देखने के बाद तो हरएक के होंठों पर कुन्दन का ही नाम होगा।"

"ओह···! तुम भी उससे जलती हो!"

"क्यूं नहीं, मैं भी इन्सान हूँ। और फिर ऐसी फ़िल्म में दो आवाज़ों को टकराने से आपको क्या मिलेगा?"

"दिल का सकून·····जानती हो टकराव में ही ज़िन्दगी को ऊपर उठने का मौका मिलता है।"

रत्ना यह सुनकर चुप हो गई और एक पत्रिका उठाकर उसके पन्ने उलटने लगी।

"रत्ना," प्रकाश ने क्षण-भर मौन रह कर कहा।

"हूँ।"

"अब मुझे तुम्हारी मदद की ज़रूरत है।"

"कहिये !"

"दीपक-राग तो खत्म हो गया अब मुझे मल्हार की तैयारी करनी है।"

"कुछ ही दीजिये···हारना तो मुझे ही है···"

"क्यूँ ?"

"जो राग ही ठंडा है, वह आग के सामने क्योंकर ठहरेगा।"

"लेकिन मुझे उस आग को ठंडा करना है। जानती हो कुन्दन हिन्दोस्तान का सबसे बड़ा गाने वाला है ?"

"इसमें क्या शक है···!"

"और आज तक फ़िल्मी दुनियाँ की कोई गायिका उसके सामने नहीं ठहर सकी।"

"तो···?"

"लेकिन एक आवाज़ है जो उसे नीचा दिखायेगी।"

"कौन-सी ?" रत्ना ने झट पूछा।

"रत्ना," प्रकाश ने धीरे से कहा।

"ऐसा क्योंकर हो सकता है ?"

"अगर तुम मल्हार गाने में मेहनत करो···दिलोजान से दीपक-राग का मुकाबला करो···और दुनियाँ में यह सच साबित करो कि 'दीपक-राग' की जलन को मल्हार ही ठंडा कर सकता है।"

रत्ना चुप हो गई और किसी गहरे सोच में खो गई। प्रकाश अपने स्थान से उठा और उसके पास आया। उसकी आँखों में विश्वास झलक रहा था। उसने प्यार-भरी दृष्टि से रत्ना को देखा और बोला—

"क्या इरादा है। साथ दोगी ? इसमें तुम्हारी भलाई है और मेरी भी।"

"कोशिश करूँगी," रत्ना ने गम्भीर होकर कहा और चली गई। प्रकाश ने उसे रोकना चाहा, परन्तु कुछ सोचकर चुप हो गया।

भाग्यवश बम्बई में इन दिनों वर्षा हो रही थी। उमड़ते हुए, काले और घने बादल छा रहे थे···हवा में भीगापन था। यह ऋतु मल्हार-राग के लिए उपयुक्त थी। बरसते हुए बरखा के कण ही प्रेम की जलन को शान्त कर सकते हैं। मल्हार की धुन बनाने के लिए रत्ना को संग लिये प्रकाश उस टापू पर जा पहुँचा जहाँ पर लाइट-हाउस स्थित था और जो रत्ना के घर की बल्कनी से दिखाई पड़ता था।

नगर के कोलाहल से दूर वह लाइट-हाउस के आँचल में बैठा आकाश पर छाई घटाओं और समुद्र में बिफरती लहरों को निहार रहा था। कुछ दूर एक पत्थर पर बैठी रत्ना उन लहरों को देख रही थी जो कुछ क्षण के अन्तर से आतीं और तट को भिगोकर चली जातीं। दोनों अपने विचारों की लड़ियाँ पिरोने में मग्न थे। पानी का यह कोलाहल उनके विचारों को भंग न कर सका। चारों ओर से बिफरते हुए सागर में स्थित लाइट-हाउस का मीनार यूँ लग रहा था, जैसे कोई दृढ़ व्यक्ति समाज के हर थपेड़े सहकर भी अडिग खड़ा हो; किन्तु उसके माथे पर बल न हो।

बड़ी देर यूँ ही खोये रहने के बाद प्रकाश उठकर रत्ना के पीछे खड़ा हो उसे देखने लगा। पानी की निरन्तर उछालों से उसका पूरा शरीर भीग रहा था। कपड़े भीगकर उसके शरीर से चिपक गये थे और उसका सुडौल शरीर बाहर झाँक रहा था। प्रकाश उसके पास बैठ गया और बोला—

"लहरों की गोद में बैठी क्या कर रही हो?"

"ओह······आप!" रत्ना चौंक कर सिमटते हुए बोली—"सोचा जबतक आप मल्हार तैयार करें मैं लहरों का खेल देख लूँ। अकेली क्या करती।"

"देखो तो···सिर से पाँव तक पानी में भीग रही हो ।"

"तो क्या हुआ, हवा के दो-चार झोकों से सूख जाएगा ।"

"कहते हैं, जवानी में जिस्म का भीग जाना अच्छा नहीं ।"

"क्यूँ ?" वह पत्थर छोड़कर खड़ी हो गई । उसके भीगे वस्त्रों से पानी रिस रहा था । प्रकाश की आँखें एक टक उसके शरीर पर लगी थीं । रत्ना ने मुँह फेरकर भीगे आँचल को अपने वक्ष पर फैला लिया । प्रकाश मुस्कराते हुए बोला—

"जवान बदन ज्यूँ-ज्यूँ पानी के थपेड़े खाता है······उसकी आग और भड़कती है । एतबार न हो तो अपने बदन को छू कर देख लो··· जल रहा होगा । रत्ना ने दृष्टि घुमाकर प्रकाश को देखा और फिर धीरे-से पलट गई । पानी के कण अब भी उसके शरीर पर मोतियों की भाँति चमक रहे थे । उसने हाथ प्रकाश की ओर बढ़ाया और बोली—

"देखिये ! हरारत बढ़ गई है या नहीं !"

प्रकाश ने उसकी उन्माद-भरी आँखों में झाँका और उसके हाथ को दबाते हुए बोला—आग की तरह तप रहा है ।"

"कहीं ऐसा तो नहीं कि आपका मल्हार 'दीपक-राग' से टकराकर खुद ही जला न डाले ।"

"नहीं, बहुत फ़र्क है इस और उस जलन में······यह जलन जवानी की है······वह दिल की······

"फिर तो आपकी राग-विद्या में जवानी की जलन को खत्म करने का भी राग होगा ?"

"है···लेकिन वह गाया नहीं जा सकता······"

"क्यों ?"

"उसके बोल अधूरे हैं···उसका साज़ बे-आवाज़ हैं ।"

"मैं समझी नहीं···"

"वह राग मुहब्बत का है, जो सिर्फ़ दिल की धड़कनों पर गाया जाता है । दिल को सकून पहुँचाता है ।"

"मुहब्बत तो एक जनून है, और जनून दिल के सपनों का सबब क्यूंकर बन सकता है।"

"मुहब्बत अगर बेग़रज़ है तो दिल के सकून का सामान बन जाती है।"

रत्ना चुप हो गई। प्रकाश फिर बोला—"रत्ना, यह आज तुम्हारे दिल पर क्या पाग़लपन सवार है। कैसी बेतुकी बातें सोचने लगी हो!

"एक बात समझ में नहीं आती।"

"क्या ?"

"मेरी बेग़रज़ मुहब्बत···मेरे दिल की राहत क्यूं नहीं बनती ?"

"रत्ना !"

"बल्कि मेरी जवानी और जज़बात राख बनते जा रहे हैं;" रत्ना ने थरथराते होंठों से यह शब्द कहे और मोटर-बोट की ओर बढ़ी। प्रकाश उसे पुकारता उसके पीछे भागा। रत्ना बोट में बैठकर अपने मुँह को हाथों में छुपाकर रोने लगी।

प्रकाश अग्नि-बोट का स्टेयरिंग थामे किनारे की ओर आ रहा था। मल्हार के स्थान पर उसके कान में सिसकियों की आवाज़ पड़ रही थी। सागर और आकाश दोनों में कोलाहल था।

चौदह

जमना ने ज्योंही किवाड़ खोला वह लता को सामने खड़ा देखकर स्तब्ध रह गई। अभी वह उसके यूँ अचानक आने पर कुछ कहने ही वाली थी कि लता लिपस्टिक से लाल हुए होंठों को फैलाते हुए मुस्कराई और बोली—

"क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ ?"

जमना ने मुस्कान का उत्तर मुस्कान में देते हुए कहा—

"आप !···आइये···आइये।"

लता हाथ में लटका हुआ पर्स लहराती हुई भीतर आ गई और फिर इधर-उधर देखकर पूछने लगी—

"प्रकाशजी घर पर हैं क्या ?"

"नहीं···स्टूडियो में गये हैं।"

"स्टूडियो···" उसने गम्भीर होकर दोहराया और फिर सांत्वना की साँस लेते हुए ड्राइंग-रूम में आ गई।

जमना जो उसके यूँ एकाएक आने के उद्देश्य का अनुमान लगाने का प्रयत्न कर रही थी, उसे गम्भीर होते देखकर जाने क्यों झेंप गई। लता ने क्षण-भर रुककर कहा—

"पर वह स्टूडियो में तो गये नहीं ?"

"आपको कैसे ज्ञात हुआ ?" जमना ने आश्चर्य-चकित पूछा।

"मैं वहीं से आ रही हूँ···" यह कहते हुए लता सोफ़े पर बैठ गई। जमना भी उसके साथ वहीं बैठ गई। लता ने कोर दृष्टि से उसे देखते

हुए उसकी मनोदशा का अनुमान लगाया और बात चालू रखते हुए बोली—"शायद आपके पति रत्ना के साथ गये हैं।"

"कहाँ ?"

"शहर की भीड़ से दूर···किसी एकांत, सुन्दर स्थान पर।

"क्यों ?"

"तानसेन के गीत तैयार करने···गीतों का संगीत रचने।"

"क्या वह काम स्टूडियो में नहीं होता ?"

"होता था···आजकल नहीं।"

"क्यों ?" आजकल ऐसी क्या बात है ?

"प्रकाशजी और रत्ना की इच्छा···यहाँ कई बन्धन हैं और वह बन्धन में रहकर यह काम नहीं करना चाहते।"

"क्या सेठजी उन्हें इस बात की आज्ञा दे देते हैं ?"

"सेठजी आज्ञा क्यों न देंगे······उन्हें तो 'जो' चाहिए मिल जाता है···" लता ने शब्द 'जो' पर बल दिया, और बात चालू रखी, 'वह जानते हैं कि इन दोनों में जितना मेल-जोल बढ़ेगा उतना ही वह मन से एक-दूसरे के लिए परिश्रम करेंगे,···यदि प्रकाशजी इस फ़िल्म के लिए कोई संगीत की कला-कृति तैयार कर सके, कोई अनोखी अछूती धुन बना सके तो सेठजी के वारे-न्यारे हैं···और फिर वह तो···" लता कहते-कहते रुक गई।

"मैं समझी नहीं।"

"धन और सुन्दरी···बस यही कुछ है यहाँ···और फिर जिसके हाथ में सुन्दरी है उसकी तो चाँदी-ही-चाँदी है···मुझे देखिए किसीको मुँह नहीं लगाती और इतने दिनों बाद भी असफल नायिका हूँ···सेठजी भी अप्रसन्न हैं···और रत्ना···अभी चार दिन हुए उसे आये हुए और सेठजी ने उसे आसमान पर चढ़ा दिया। आप जानती हैं क्यों ?"

"नहीं तो···"

"सेठजी ने एक दिन अकेले में मुझे छेड़ना चाहा···मैं उनके फंदे

में न आई और बिगड़ गई······बस उस दिन से मेरा पतन आरम्भ हो गया।"

"ओह! समझी···इसीलिये शायद वह भी आपको अच्छा नहीं समझते।"

"कौन?" लता ने पूछा।

"प्रकाशजी···"

"वह विचारे क्या जानें···" लता क्षण-भर रुककर बोली—"उन्हें तो जो सेठजी कहेंगे वही सोचेंगे।"

दोनों फिर मौन हो गईं। लता मन-ही-मन जमना के हृदय में उठते हुए उबाल का अनुमान लगा रही थी···उबाल तूफान का रूप धारण कर सकते हैं···और यह तूफ़ान ही उसका मार्ग साफ़ कर सकता है··· रत्ना उसके मार्ग में काँटा थी और इसे निकाल-फेंकना आवश्यक था··· उसे रत्ना से अत्यन्त घृणा थी···उसे ज्ञात था कि रत्ना से प्रकाश को कितना प्रेम था और जमना इसे किसी प्रकार भी सहन न कर सकती थी···उसकी तबाही में और इसके लिए उसे जमना से बढ़कर कोई अच्छा हथियार न मिल सकता था···उन दोनों का उद्देश्य एक था··· रत्ना की तबाही···दोनों उससे जलती थीं।

कमरे के मौन को लक्ष्मी की आवाज़ ने भंग किया। वह बाहर से खेलती हुई आई और माँ से पैसे माँगने लगी। जमना ने संकेत से उसे टालना चाहा; किन्तु वह हठ करने लगी। लता ने बढ़कर उसे बाँहों में उठा लिया और बोली—

"कितनी प्यारी बच्ची है···आपकी···!"

"जी हाँ···लक्ष्मी! आंटी को नमस्ते कहो।'

लक्ष्मी ने हाथ जोड़कर लता को नमस्ते की। लता ने उसे गोद से उतारते हुए पर्स से पाँच रुपये का एक नोट निकाला और उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली, "लो बेटा···"

लक्ष्मी ने माँ की ओर देखकर नोट लेने से इन्कार कर दिया लता।

ने बलपूर्वक नोट बच्ची की हथेली पर रख दिया और उसकी मुट्ठी बन्द करते हुए बोली—

"नहीं, बेटा ! आंटी से ना नहीं करते।" और फिर जमना की ओर देखकर कहने लगी, "पहली बार मिली है···तो इसे ख़ाली हाथ छोड़ दूं।"

"नहीं···यह तो ठीक नहीं···और फिर इतने रुपये······" जमना बोली।

"देखो बहन ! मुझे शर्मिन्दा न करो·········मुझे तो और देना चाहिये था।"

जमना चुप हो गई। लता पर्स को लहराती हुई उठी और बोली—

"अच्छा ! मैं चली···"

"यह क्या ?···अभी आईं और अभी चल दीं···"

लता ने जमना की आँखों में उत्सुकता देखी और बनते बोली—

"आपके पड़ोस में आई थी···सोचा, देखती चलूं।"

"धन्यवाद ! किन्तु शीघ्रता क्या है इतनी······अभी बैठिये।" जमना ने लता का हाथ पकड़कर उसे बलपूर्वक बिठला दिया और प्लेट में फल लेकर सामने रख दिये।

"एक बात पूछूं···सच कहियेगा···" संतरा छीलते हुए जमना ने प्रश्न किया।

"पूछिये···"

"प्रकाशजी और रत्ना में क्या सम्बन्ध है ?"

"दुनियाँ की दृष्टि में तो सुर और आवाज़ का है ; ······किन्तु मैं ऐसा नहीं समझती।"

"क्यों ?"

"यह बहकी-बहकी बातें···हर समय का मेल-जोल···यौवन···सौन्दर्य···यह सब देखते हुए भला कोई क्या समझे···आप तो एक पत्नी हैं और मन की भावनाओं की उथल-पुथल को भली प्रकार समझ सकती

हैं···आप ही कहिये···आपका मन क्या कहता है ?"

"वह ऐसे हैं···यह विश्वास नहीं आता ।" जमना ने कहा ।

"आप अभी भोली हैं···दुनियाँ बहुत दूर जा चुकी है···सच पूछिये तो मुझे आप पर तरस आता है···यह छोटा-सा परिवार···यह नन्ही लक्ष्मी··· आपकी जवानी···डरती हूँ कहीं रत्ना की छाया इन सब पर न पड़ जाये ।"

"लताजी !" उसके काँपते होंठों ने कहा ।

"हाँ बहन ! तुम्हारा मन दुःखी करने से तड़प तो मुझे भी होती है ; किन्तु ऐसी बात का क्या पर्दा जो तुम्हारे जीवन को नष्ट कर रही हो···सच तो यह है कि आज फ़िल्मी-जगत् के हर व्यक्ति की ज़बान पर उनके प्रेम की चर्चा है ।"

यह कहकर वह मौन हो गई ; किन्तु जमना के घाव पर जो नमक उसने छिड़क दिया था उसका वह अनुमान न लगा सकी । उसने तो जो विष उगलना था सो उगल दिया ; किन्तु जिसकी धमनियों में यह विष फैलकर ऊधम मचा रहा था, उसकी दशा को जानना कठिन था ।

थोड़ी देर जमना पत्थर-सी बनी उसे देखती रही और फिर बोली—

"जानती हैं उस दिन हाजीअली के मज़ार पर मैंने क्या मुराद माँगी ?"

"क्या ?"

"अपने सुहाग की रक्षा की···रत्ना से रक्षा···"

"और आप जानती हैं मैंने क्या माँगा ?"

"क्या ?" जमना ने उत्सुकता प्रकट की ।

"रत्ना का नाश···" उसने दाँत पीसते हुए उत्तर दिया ।

"नाश···!"

"हाँ···वह आपका सुहाग लूटने की चिन्ता में है और मेरा नाम और मेरा धन छीनने में उसीका हाथ है···जिस दिन से वह कम्पनी में आई है, मेरे रोल घटते जा रहे हैं······आज जब मैं अपने अधिकार के

लिए सेठ साहब के पास गई तो जानती हैं आप···क्या मिला मुझे ? कम्पनी से निकल जाने का नोटिस·········" उसने करुण-स्वर में स्वयं ही उत्तर दिया। यह कहते हुए उसकी आँखें भर आईं।

"किन्तु, अब क्या हो सकता है ?" जमना ने सहानुभूति प्रकट करते हुए पूछा।

"बहुत-कुछ, यदि आप सहायता करें तो।"

"मैं···मैं क्या कर सकती हूँ ?"

"हाँ आप,···इच्छा दोनों की एक है, उद्देश्य एक है···हमारे नाश का एक ही केन्द्र है—एक ही कारण है···हमें इस काँटे को मिल-जुलकर निकालना चाहियें······समय पर इसे दूर न किया तो आजीवन रोना पड़ेगा।"

"तो क्या करूँ ? आप ही बताइये कोई उपाय ?"

लता ने टेढ़ी दृष्टि से जमना को देखा और पर्स में से एक छोटी-सी शीशी निकालकर जमना को दिखाते हुए कहा—

"किसी प्रकार इस दवाई की कुछ बूंदें उसे पिला दीजिये।"

जमना काँप गई और डरी-सी उस शीशी को देखने लगी। लता कुछ देर मौन रहने के बाद फिर बोली—

"नहीं···डरो नहीं·· मेरा उद्देश्य उसके प्राण लेना नहीं·· इस दवाई के पीने से उसका गला बैठ जायेगा······जिस आवाज़ पर उसे इतना घमण्ड है वह बेसुरी हो जायेगी···बस यही एक साधन है जिसके द्वारा हम दोनों का भविष्य बन सकता है···तुम्हारा सुहाग बच सकता है और मेरी नौकरी।"

जमना कोई निर्णय न कर सकी और मूर्ति बनी खड़ी उसे देखती रही। उसके मस्तिष्क में बड़े विचित्र विचारों का एक ताँता बँध गया···वह क्या करे ? क्या अपने जीवन की रक्षा के लिए वह इतना भयानक पग उठा सकेगी ? लता ने इस पाप का भार उस पर क्यों डाल दिया है ? आवाज़ न रहेगी तो रत्ना न रहेगी···उसके जीवन के

उत्थान का रहस्य उसकी आवाज़ में है, आवाज़ न रहेगी तो वह स्वयं न रहेगी'' रत्ना'''उसका सुख-चैन लूटने वाली रत्ना'' क्या व्यंग है जीवन का'''वह स्वयं उदासियों के अंधकार में डूबी विवाह के बन्धन को निभा रही है, यह कर्त्तव्य है न उसका'''नारी का कर्त्तव्य'''और वह रत्ना'''सुर और आवाज़ का बन्धन जोड़ रही है''''''दोनों बन्धन तो नहीं चलेंगे'''नहीं चलेंगे''''"

उसे पता भी न चला कि कब लता उसे छोड़कर चली गई। उसके विचारों की कड़ी लक्ष्मी की आवाज़ से भंग हुई जो फिर बाहर से लौट आई थी और माँ की टाँगों से लगकर रूँ-रूँ करने लगी थी। सामने मेज़ पर वह शीशी पड़ी थी जो लता के हाथ में थी और जिसमें बन्द कोई काला पदार्थ जमना को झाँक रहा था'''''''''एक सँपेरे के समान फुफकार रहा था। जमना ने झट उस शीशी को उठाकर आँचल में छिपा लिया। लक्ष्मी उसकी टाँगों से चिपकी रोये जा रही थी। विष और ममत्व दोनों उसके पास थे और उसने दोनों को सीने से लगा लिया।

उस दिन न तो जमना ने घर में चूल्हा जलाया और न सफ़ाई ही की। लक्ष्मी जो दिन में तीन बार फ्राक बदलती, आज सवेरे से मैले कपड़ों में घूम रही थी। लता के जाने के बाद से वह सोफ़े पर यों बेसुध पड़ी थी मानो घर पर कोई शोक हो गया हो।

रात के दस बज गए थे। वह चुपचाप लेटी अपने जीवन के विषय में सोच रही थी। लक्ष्मी बिना दूध पीए कालीन पर ही सो गई थी। द्वार पर आहट हुई और वह आँखें खोलकर इधर-उधर देखने लगी। अब आँखें खोलने पर उसे भान हुआ कि कमरे में अंधेरा था। फिर आहट हुई और उसने झट उठकर बत्ती जला दी। उठते हुए लता वाली शीशी कालीन पर गिर गई। शीशी को देखते ही उसके मन में एक भयानक निश्चय ने अँगड़ाई ली। उसने शीशी को उठाया और धीरे-से अँगीठी पर एक कोने में रख दिया।

घंटी बजने की आवाज़ आई और उसके साथ किसीने पुकारा, "जमना जमना।"

जमना ने भीतर से किवाड़ खोल दिया। सामने रत्ना को साथ लिए प्रकाश खड़ा था। दोनों को इकट्ठा देखकर वह क्षण-भर के लिए यों काँपी मानो अचानक बिच्छू ने काट खाया हो। वह स्तब्ध-सी एक टक देहली के बीचों-बीच खड़ी उन्हें देखने लगी। रत्ना ने उसे हाथ जोड़कर अभिवादन किया। जमना एक ओर हट गई और दोनों एक साथ भीतर आ गए। जमना को यह जाँचने में देर न लगी कि आज दोनों कुछ अति प्रसन्न थे। रत्ना आराम-कुर्सी पर बैठ गई और प्रकाश ने सोफ़े पर टाँगें फैलाते हुए जमना को सम्बोधित किया—

"खाना तैयार है न···"

"जी···" और उसे एकाएक याद आया कि आज तो उसने चूल्हा भी नहीं जलाया।

"आज रत्ना भी खाना यहीं खाएगी।" प्रकाश ने बिना उससे सहमति लिए कहा।

"नहीं, रहने दीजिये······अब विचारी आधी रात को चूल्हा जलाएँगी।" रत्ना ने जमना की ओर देखकर सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा।

जमना जो मौन खड़ी दोनों को देख रही थी, रुकते-रुकते बोली—

"वह तो जलना ही है···हम सबके लिए।"

"क्या खाना तैयार नहीं ?" प्रकाश ने पूछा।

"नहीं।"

"क्यों ?"

"तबीअत ठीक नहीं थी···बिस्तर से उठी ही नहीं।"

"ओह···!"

"यही तो मैंने कहा···रहने दीजिये।"

"नहीं···ऐसा भी क्या······खाना तो बनना ही है···" प्रकाश ने

रत्ना को देखते हुए कहा और फिर जमना की ओर मुड़कर बोला—

"शीघ्र आलू की तरकारी बना लो।"

"मेरी मानिये···" रत्ना ने उसकी बात को काटा।

"क्या ?"

"सभी चलकर किसी रैस्टोरेंट में खाए लेते हैं।"

"ख़याल तो बुरा नहीं···" प्रकाश बोला।

"आप जाइये···मुझे भूख नहीं।" जमना ने बीच में कहा।

"क्यों ?" प्रकाश ने उसकी ओर मुड़ते हुए पूछा।

"तबीअत भी ठीक नहीं और लक्ष्मी भी सो रही है।"

"बात तो ठीक है।" रत्ना बोली।

"तब ?" प्रकाश ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"आपको अभी नहाना है न······सो आप नहाइये, तब तक मैं ड्राइवर को लेकर दादर रेस्टोरेंट से खाना ले आती हूँ।"

"लेकिन···"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं···" रत्ना ने अपना पर्स सँभाला और तेज़ी से बाहर निकल गई। जमना और प्रकाश देखते ही रह गए।

प्रकाश ने कुर्त्ता उतारकर एक ओर रखा और जमना से तौलिया माँग कर स्नान के लिए चला गया। जमना मशीन की भाँति चुपचाप अलमारी से उसके कपड़े निकालने लगी। अँगीठी पर रखी विष की शीशी को भी उसने देखा और उसी समय नीचे रत्ना की गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज़ सुनी। भयानक विचारों ने फिर अपनी छाया डाली और लता के शब्द उसके कानों में गूंजने लगे,···उसे यों अनुभव हुआ कि भगवान् ने उसके सुहाग की रक्षा के लिए ही लता को भेजा था···यह शीशी ही बचा सकती है······इससे बढ़कर सुन्दर अवसर कौनसा हो सकता था···रत्ना स्वयं ही उसके पास चली आई थी। बड़ी सुगमता से वह इस दवाई की दो-चार बूंदें पीने के पानी में मिलाकर उसे दे सकती थी···कोई उस पर सन्देह भी न करेगा······होटल का

बुरा खाना गले की खराबी का बहाना बनाया जा सकता था।

वह यह सोच ही रही थी कि प्रकाश ने उसे पुकारा। वह शीघ्र उसका कुर्ता लेकर गुसलघर की ओर भागी। कुर्ता लेते हुए प्रकाश ने उसके हाथ को ज़ोर से दबा दिया। जमना के मन में चोर तो था ही, भय से काँप गई। प्रकाश मुस्कराते हुए बोला—

"शायद तुम इस बात से अप्रसन्न हो······कि मैं रत्ना को साथ ले आया।"

"नहीं तो······" उसने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा, और फिर सँभलते हुए बोली, "बल्कि मैं तो सोच रही थी कि वह क्या कहती होगी···घर पर खाना भी नहीं बना।"

"नहीं, वह ऐसा नहीं सोचती···दूसरे के दुःख को वह अनुभव कर सकती है।"

जमना प्रकाश की बात सुनकर चुप हो गई। वह मन-ही-मन अपने मन की तुलना रत्ना से करने लगी। उसका पति रत्ना को कितनी कोमल-हृदया समझता था। कुछ क्षण के मौन को फिर प्रकाश ने तोड़ा—

"जानती हो आज हमने तानसेन का मल्हार-राग तैयार कर लिया है।"

"कैसा रहा ?"

"कल रिकार्ड हो रहा है···स्टूडियो चलोगी ?"

जमना ने प्रकाश के प्रश्न का तो कोई उत्तर न दिया और स्वयं पूछा—

"रत्ना की आवाज़ के बारे में आपका क्या विचार है ? क्या वह कुन्दन के सामने सफलता से गा सकेगी ?"

"क्यों नहीं ? मुझे उसकी आवाज़ पर पूरा भरोसा है···और जमना यदि आज यह आवाज़ मेरी न होती तो शायद जीना कठिन हो जाता··· निस्संदेह मेरी सफलता में रत्ना का हाथ है···"

"या यूँ कहिए कि रत्ना आपका जीवन है ?"

"निस्संदेह...उसकी आवाज़ शरीर है और मेरी धुन, मेरा संगीत आत्मा...दोनों का गूढ़ सम्बन्ध है ।"

रत्ना गम्भीर हो गई। वह मूर्ख न थी और दोनों के हृदयों में उठती तरंगों को देख चुकी थी। वह सोचने लगी यदि रत्ना की आवाज़ ही उनके लिए सब-कुछ है तो वह इस आवाज़ को सदा के लिए समाप्त कर देगी...न आवाज़ रहेगी और न उनका संगीत उसका आश्रय लेगा। उसकी आँखों के सामने लता कीं दी हुई शीशी वाला तरल पदार्थ दौड़ गया और वह खाने के लिए मेज़ पर प्लेटें लगाने लगी।

रात मौन थी। लक्ष्मी सो रही थी और गुसलघर में फ़व्वारे का गिरता हुआ पानी कुछ विचित्र-सी आवाज़ उत्पन्न कर रहा था। जमना के मन में एक हलचल मची और यह पानी की आवाज़ उसके मस्तिष्क में यूँ लग रही थी जैसे कोई बड़ी भयानक जलधारा बड़ी-बड़ी चट्टानों को तोड़ती बही जा रही थी। वह बड़ी देर तक खोई-खोई मेज़ पर प्लेटें लगाती रही।

"क्या सोच रही हो जमना ?"

जमना के विचारों की कड़ी को प्रकाश ने तोड़ दिया। वह नहा कर उसके पीछे आ खड़ा हुआ था।

"एक बात है..."उसने पति के सामने मुड़ते हुए कहा।

"क्या ?"

"यदि रत्ना की आवाज़ को कभी कुछ हो गया तो आप क्या कीजियेगा ?"

"यह क्या सोच रही हो...व्यर्थ की बात।"

"यूंही विचार आया था।"

"तो जानती हो क्या होगा ?"

"क्या ?" उसने आँखें उठाईं।

"जो साज़ कि उसकी आवाज़ के साथ बजता है······वह भी टूट जाएगा······सदा के लिए मौन हो जाएगा।"

प्रकाश ने गम्भीर होकर उत्तर दिया। अभी शब्द उसके मुँह से निकले ही थे कि फिर घंटी की आवाज़ सुनाई दी—शायद रत्ना लौट आई थी। जमना मेज़ पर रखी प्लेटों को साफ़ करने लगी और प्रकाश ने किवाड़ खोल दिया।

रत्ना ड्राइवर के हाथ खाना उठवाकर ले आई थी। जमना ने उससे खाना ले लिया और प्लेटों में लगाने लगी।

"जमना! दीदी···एक गिलास पानी तो दो।" रत्ना ने खाना लगाने में जमना का हाथ बँटाते हुए कहा।

"पानी क्यों···जाओ जमना रत्ना के लिए शरबत बना लाओ।" प्रकाश ने बीच में कहा।

जमना दूसरे कमरे में चली गई। शरबत बनाते हुए उसने लता वाली पूरी शीशी उसमें उँडेल दी। शीशी ख़ाली करके उसने नीचे सड़क पर फेंक दी और शरबत वाले गिलास को आँखों के सामने लाकर देखने लगी। शरबत में उसे रत्ना की छवि दिखाई दी···चीख़ती हुई···गला पकड़े हुए। उसके कानों में प्रकाश के यह शब्द गूँज़ने लगे, 'यदि आज यह आवाज़ मेरी न होती तो शायद जीना कठिन हो जाता··निःसन्देह उसकी आवाज़ शरीर है और मेरी धुन, मेरा संगीत आत्मा··दोनों का गूढ़ सम्बन्ध है····' और उसने सोचा यह सम्बन्ध आज टूट जायेगा···रत्ना से उनका गूढ़ सम्बन्ध नहीं रह सकता, इस सम्बन्ध की पात्र वह स्वयं है।

"अभी शरबत नहीं बना क्या?" उसकी विचारधारा को प्रकाश ने तोड़ दिया जो थोड़ी देर बाद स्वयं उस कमरे में आ गया और गिलास उसके हाथ से थामकर बोला—"तुम पानी वाला जग उठा लाओ··· इसे मुझे दे दो।"

जमना कुछ भी न बोल सकी और शक्तिहीन-सी चुपचाप वहीं खड़ी हो गई। प्रकाश शरबत का गिलास लेकर दूसरे कमरे में चला

गया। जमना के मस्तिष्क में कई प्रकार के हथोड़े-से पड़ने लगे···रत्ना की आवाज़ का नाश···रत्ना का विनाश···बिलखती हुई, सिसकती हुई, चिल्लाती हुई रत्ना···रत्ना की मौत···यह चित्र उसके मस्तिष्क के छायापट पर एक क्षण में ही घूम गये···और इसका भार किस पर होगा? तुझपर जमना···तुझपर···अपने स्वार्थ के लिए यह घोर पाप··· तू नागिन है···हत्यारी है···पापिन है···उसके अन्तर ने ताड़ना दी और वह पागलों के समान भीतर वाले कमरे की ओर भागी।

प्रकाश शरबत का गिलास रत्ना को दे रहा था। जमना की आँखों के आगे अँधेरा छा गया और वह जोर से चीख़ मारकर फ़र्श पर गिर पड़ी।

चीख़ सुनकर रत्ना के हाथ काँपे और शरबत का गिलास उसके हाथ से छूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। प्रकाश ने झट दौड़कर उसे संभाला और उठाकर चारपाई पर लिटा दिया। उसकी साँस ऐसे चल रही थी जैसे बहुत भाग कर आई हो। लक्ष्मी भी चीख़ की आवाज़ सुनकर जाग उठी और रोने लगी। रत्ना ने लक्ष्मी को सँभाला और प्रकाश ने जमना के कंठ में पानी की कुछ बूंदें टपकाते हुए पूछा—

"क्यों, क्या हुआ?"

जमना ने कोई उत्तर न दिया और पथराई हुई-सी आँखों से पति को देखने लगी।

"क्यों जमना! तबीअत तो ठीक है?" रत्ना ने समीप आकर पूछा।

"कभी-कभी यूँही डर जाती है।" प्रकाश बोला।

"आप बिचारी का इलाज जो नहीं कराते···ध्यान नहीं रखते तक-लीफ़ ही देते हैं।"

प्रकाश चुप रहा।

"देखिये···सुबह से तबीअत नासाज़ है और आपको ख़बर तक नहीं···इस पर शरबत बनाने को कह दिया।"

"मुझे इसकी तबीअत ख़राब हो जाने का सपना तो नहीं आया नहीं···कितनी बार मैंने समझाया यूँ चुप-चुप न रहा करो···लेकिन यह

है कि मानती ही नहीं। बस खुद-ब-खुद अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ती रहती है।" प्रकाश ने बिना रुके कहा।

"क्या आपने कभी यह सोचा यह क्यों है ? रत्ना ने लक्ष्मी को जमना के साथ लिटा दिया और स्वयं भी चारपाई पर बैठकर जमना की ओर देखने लगी। जब प्रकाश उसके प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका तो स्वयं ही कहने लगी—

"इसलिए प्रकाशजी ! कि औरतों के दिल को समझना इतना आसान नहीं।"

"यह तो मैं जानता हूँ···वह बहुत गहरी होती हैं···उनकी थाह कौन पा सकता है।"

"थाह ? इसमें कुछ सच तो जरूर है लेकिन वह इतनी गहराई भी नहीं जितना आप समझ रहे हैं।"

"तुम तो जमना के दिल की बात जानती हो न ?"

"क्यों नहीं···"

"तो बताओ यह उदास-उदास क्यों रहती है ?"

"सवाल तो बजा है···और सोचने काबिल है···घर, इज्ज़त, दौलत सब-कुछ है लेकिन यह खुश नज़र नहीं आतीं।" रत्ना ने प्रकाश का ही विचार दोहराया।

"यही तो मैं भी सोचता हूँ···क्यों ?"

"उसके पास सब-कुछ है···लेकिन आप एक बात भूल जाते हैं··· यह सब सामान आपके बिना बेकार है।"

"लेकिन मैं···"

"आप ही कहिए···" वह काटते बोली, "इनको आप कितनी बार अपने साथ घूमने ले गये हैं···कभी सिनेमा, क्लब, पिकनिक···आप उनका दिल बहलाने को कुछ भी तो नहीं करते···इतनी देर रात गये घर लौटते हैं···"

"रत्ना···"प्रकाश बोझल मन से बोला, "क्या यही सामान दिल-बहलाने का है ?"

रत्ना ने कोई उत्तर न दिया। जमना अब सँभल चुकी थी और विस्तर से उठने का प्रयत्न कर रही थी। रत्ना ने उसे सहारा दिया और बोली—"अभी आराम कीजिये···"

"नहीं···अब मैं ठीक हूँ···खाना ठंडा हो रहा है।" यह कहकर वह उनके साथ खाने की मेज़ पर आ बैठी।

वातावरण अनायास ही गम्भीर हो गया था। रत्ना ने परिवर्तन लाने के लिए मुस्कराते हुए कहा—

"ऐसे लगता है आप शरबत मुझे दिल से नहीं पिला रही थीं।"

"कैसे ?" जमना ने धीमे स्वर में पूछा।

"पीने से पहले गिलास जो फूट गया।"

"ओह ! आप तो खाना दिल से लाई हैं न ?" जमना ने विना मुस्कराये उत्तर दिया।

"दिल से नहीं·· पैसों से···" रत्ना ने हँसते हुए कहा और उसकी हँसी से कमरे में मानो घुंघरू छनक उठे हों। उसने फिर जमना की ओर देखा और बोली—

"बहन ! ज़माना बदल गया है···अब तो दिल के बदले में कुछ नहीं मिलता।"

"दिल तो मिल सकता है···" जमना ने झट उत्तर दिया और धीरे-धीरे ग्रास चबाने लगी।

दूसरे दिन जब लता को ज्ञात हुआ कि जमना ने इतना सुन्दर अवसर हाथ से खो दिया है तो वह उस पर और डोरे डालने लगी। उसने रत्ना के विरुद्ध कई झूठ-मूठ बातें कहकर उसके कान भरने आरम्भ कर दिये; किन्तु जमना अबके उसकी बातों में न आई। निःसन्देह वह प्रकाश और रत्ना में यह प्रेम सहन न कर सकती थी; किन्तु वह ऐसा महान पाप करने से भी असमर्थ थी·· उसकी मान-मर्यादा

इसके विरुद्ध थी·· उसकी धमनियों में राजपूती शराफ़त का लहू था।

दिन बीतते गये। सफलता हर पग पर रत्ना और प्रकाश के पाँव चूमती रही। 'तानसेन' पूर्ण होकर रिलीज़ हो गई और जिस शहर में भी दर्शाई गई वहाँ उसने झंडे गाड़ दिये। रत्ना का मल्हार-राग कुन्दन के दीपक राग को भी पीछे छोड़ गया। जिसने दीपक को सुना उसके हृदय में ज्वाला धधक उठी और फिर जब मल्हार गाकर उसने स्वयं इन्द्रदेव को छम-छम बरसने पर विवश कर दिया तो श्रोतागण वाह-वाह कर उठे···धधकते हुए हृदयों में शीतलता आ गई·· ज्वाला ठण्डी पड़ गई। ऐसा गाना अभी तक किसी फ़िल्म ने प्रस्तुत न किया था। पत्र-पत्रिकाओं ने जी खोलकर उसकी प्रशंसा की, संगीत-सभाओं ने रत्ना को मान-पत्र भेंट किये और संगीत-सम्राज्ञी की पदवी दी।

कुन्दन ने उसके सन्मान में एक विशाल पार्टी की आयोजना की और सेठजी ने कुन्दन, रत्ना और प्रकाश तीनों को स्वर्ण-पदक भेंट किये। सर्वत्र प्रसन्नता थी, हर्ष था, सफलता थी; किन्तु इन सबमें जमना को तनिक भी भाग न मिला······यूँ तो सब कुछ था; किन्तु जब वह मन ही उसका न था जिसकी वह अधिकारिणी थी तो यह सब व्यर्थ था··· धूल के समान व्यर्थ और यह दुख उसे भीतर-ही-भीतर घुन के समान खाये जा रहा था।

उन्हीं दिनों रत्ना के जीवन में एक विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हुई। एक रात जब वह सिनेमा देखकर लौटी तो प्यानो पर कुछ पैकेट देखकर आश्चर्य में पड़ गई। आस-पास दृष्टि दौड़ाते हुए उसने रोज़ी को पुकारा। वह रसोईघर से दौड़ती हुई मालकिन के सामने आ खड़ी हुई।

"रोज़ी! यह सब क्या है······कौन लाया है?" उसने प्यानो पर रखे पैकेटों की ओर संकेत किया।

रोज़ी अभी कोई उत्तर न दे पाई थी कि इस आवाज़ ने उसे चौंका दिया—

"यह गुस्ताखी मुझसे हुई है।"

रत्ना ने पलटकर देखा। सेठजी आराम से सोफ़े पर बैठे मुस्करा रहे थे। शायद वह कुछ देर पहले ही आये थे और उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। रत्ना ने रोज़ी को जाने का संकेत किया और स्वयं सेठजी के पास आकर खड़ी हो गई। उसे यह उपहार और उपकार अच्छे न लगते थे। स्वर में कुछ रुखाई लाते हुए उसने कहा—

"यह सब क्या है...सेठजी ?"

"एक नाचीज़ तोहफ़ा समझिये।"

"एक या अनेक...आप हमेशा इस तकल्लुफ़ में क्यों रहते हैं ?"

"तकल्लुफ़ कैसा...दिल चाहा और आपसे मिलने चला आया... यह तो कुछ नहीं...मैं तो और फ़ैसला किये बैठा हूँ।" उनकी मुस्कराहट कुछ गम्भीरता में परिवर्तित हो गई।

"क्या ?"

"मैं चाहता हूँ अपनी दौलत के अंबार को बाँट लूँ...आधी आप और आधी मैं।"

"कम्पनी में पार्टनर..." रत्ना चकित थी कि सेठजी आज यह कैसी प्रस्तावना लेकर आये हैं।

"कम्पनी में नहीं, ज़िन्दगी में......" सेठजी ने झट बात स्पष्ट कर दी।

"जी..." वह बौखलाई।

"हाँ रत्ना !" सेठजी सोफ़ा छोड़कर उसके समीप आ गये और बोले, "आज कई दिन से सोच रहा था कि दिल की बात कह दूँ... सो आज मैंने फ़ैसला कर लिया है...उम्मीद लेकर आया हूँ...मायूस नहीं लौटना चाहता।"

"क्या ?" उसका उद्देश्य समझते हुए रत्ना ने पूछा।

"तुम्हें शरीके-ज़िन्दगी बना लूँ...जीवन-साथी।"

"सेठजी..." उसका मुख एकाएक लाल हो गया और वह बिना

कोई उत्तर दिये बाल्कनी में जा खड़ी हुई।

जब बड़ी देर तक वह न लौटी तो सेठजी धीरे-धीरे पाँव उठाते स्वयं बाल्कनी में उसके पास जा पहुँचे। वह मुंडेर का सहारा लिए मौन क्षितिज में झाँके जा रही थी। सेठजी के पाँव की आहट सुनकर उसने पलटकर देखा और धीरे से बोली—

"सेठजी ! एक बात पूछूँ।" उसके स्वर में तनिक भी क्रोध न था ; किन्तु आँखों में आँसू अवश्य तैर रहे थे।

"क्या ?"

"ज़िन्दगी में दिल कितनी बार दिया जाता है ?"

"एक बार···"

"वह मैं दे चुकी···अब आप जा सकते हैं···" यह कहकर वह दूर समुद्र को देखने लगी।

सेठजी थोड़ी देर चुपचाप कुछ सोचते रहे और फिर लम्बे डग भरते हुए बाहर निकल गये।

जब सेठजी के पाँव की आहट धीमी हो गई तो उसने फिर मुड़कर मुख्य द्वार की ओर दृष्टि-भर देखा। रोज़ी सेठजी के चले जाने पर किवाड़ बन्द कर रही थी। वह धीरे-धीरे बाल्कनी से ड्राइंग-रूम में लौट आई और चुपचाप प्यानो के पास खड़े होकर उन उपहारों को देखने लगी जो सेठजी वहीं छोड़ गये थे। उसने बिना खोलकर देखे रोज़ी को उन्हें एक ओर रखने का आदेश दिया और सोचने लगी··· उसके जीवन में यह नई समस्या उठ खड़ी हुई थी। उसने सवेरे ही सेठजी के सब उपहार लौटा देने का निश्चय कर लिया।

———

पंद्रह

दिसम्वर के अन्तिम दिन थे और क्रिस्मस की धूम-धाम। सर्वत्र गहमागहमी थी···नाच-रंग की सभाएं लगी थीं और शराब के दौर चल रहे थे। यद्यपि बम्बई में शीत न पड़ता था, फिर भी कभी-कभार इस ऋतु में जब समुद्र की ठंडी हवाएं शहर की दिशा में चलतीं तो लोग ठिठुरने लगते। आज भी ऐसा ही शीत पड़ रहा था।

बम्बई का शायद ही कोई ऐसा बड़ा क्लब, नाच-घर अथवा फ़िल्मी सभा होगी जिसने इस अवसर पर रत्ना को आमन्त्रित न किया हो; किन्तु वह ऐसी सभाओं से सदा घबराती और कोई-न-कोई बहाना बच निकलने का बना लेती। उसे ऐसे लोगों में घिरे रहने से डर-सा लगता था। आज भी इन 'बुलावों' से बचने के लिए वह सवेरे से ही घर में न थी। जो कोई भी आता रोज़ी का निश्चित उत्तर लेकर निराश लौट जाता, "मिस साहबा दो दिन के लिए बम्बई से बाहर गई हैं।" किन्तु, जब मिलने वालों में प्रकाश भी आ गया तो रोज़ी को अपना उत्तर बदलना पड़ा। उसने प्रकाश को सादर ड्राइंग-रूम में बिठाया और रत्ना का लिखा हुआ एक पत्र उसके हाथ में दिया।

प्रकाश ने झट लिफ़ाफ़ा खोला और पत्र पढ़ने लगा। केवल एक वाक्य लिखा था, "आपकी लाइट-हाऊस पर प्रतीक्षा करूंगी।" प्रकाश ने आश्चर्य में पत्र को लपेटकर जेब में डाला और प्रश्न-सूचक दृष्टि से रोज़ी को देखते हुए पूछने लगा—

"रत्ना कब गई थी ?"

"पौ फटने से पहले···कह गईं थीं, रात देर में लौटेंगी।"

"कुछ और बात।"

"बस एक पत्र दिया था जो आपके हाथ में है।"

प्रकाश ने कलाई पर बँधी घड़ी में देखा। दो से ऊपर का समय था। आकाश में छाये बादलों के कारण वह अनुमान ही न लगा सका था कि घड़ी की सुइयाँ इतना आगे निकल गई हैं। वह झट नीचे उतरा और गाड़ी स्टार्ट करने लगा। अभी गाड़ी चली भी न थी कि सेठजी की गाड़ी बिलकुल उसके साथ आकर रुकी। प्रकाश ने झट ब्रेक पर पाँव रखा और खिड़की में से गर्दन बाहर निकालकर बड़े दिन का मुबारिक कहा।

"सेम टू यू (same to you)" सेठजी ने अंग्रेजी में कहा और झट पूछा, "किधर की तैयारी है ?"

"ज़रा किसी काम से जा रहा हूँ।" प्रकाश ने उत्तर दिया।

"रत्ना घर पर है क्या ?"

"नहीं···"

"कहाँ गई ?"

"मालूम नहीं···कुछ कह नहीं गई।"

"मुमकिन है आती हो···आओ, इन्तज़ार करें।"

"नहीं सेठजी ! मुआफ़ी चाहता हूँ, मुझे एक ज़रूरी काम है··· आप बैठिए।"

"तो शाम पार्टी पर आ रहे हो न ?"

"कोशिश करूँगा·· और रत्ना······?"

"इसीके लिए तो आया था।"

"अच्छा, मुआफ़ कीजियेगा मुझे कुछ जल्दी है।" प्रकाश ने दाएँ हाथ से सेठजी को सलाम किया और ब्रेक पर से पाँव हटा दिया। सेठजी अपनी गाड़ी में से उतर आए और कुछ देर खड़े उसकी गाड़ी को जाते देखते रहे और फिर सीढ़ियाँ चढ़ गए।

प्रकाश ने गाड़ी फुल स्पीड पर छोड़ दी और उस सड़क पर हो लिया जो लाइट-हाऊस को जाती थी। वह उड़कर अपनी प्रियतमा के पास पहुँचना चाहता था। सवेरे से वह अकेली बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

लाइट-हाऊस वाले टापू पर पहुँचते ही उसने अपनी गाड़ी बिलकुल रत्ना की नई शेवरलैट गाड़ी के साथ खड़ी कर दी और गर्दन घुमाकर इधर-उधर देखने लगा। रत्ना कहीं दिखाई न दी। उसने सोचा यहीं कहीं होगी और काले पत्थरों पर पाँव जमाता शीघ्रता से लाइट-हाऊस की ओर बढ़ा। शीतल हवा शरीर को काट-सी रही थी और समुद्र की उछालें काली चट्टानों से टकराकर वातावरण में एक न मिटने वाला शोर उत्पन्न कर रही थीं।

रत्ना लाइट-हाऊस में भी न थी। उसकी व्याकुलता बढ़ रही थी। उसने उसे पुकारना उचित न समझा और दाएँ-बाएँ फैली हुई चट्टानों में देखने लगा······आखिर गाड़ी को वहीं छोड़कर वह और कहाँ जा सकती थी। सहसा दो चट्टानों के बीच एक पत्थर पर पानी में पाँव लटकाए बैठे रत्ना को देखकर वह रुक गया। वह कंधों पर बादल से घने केश फैलाए नीचे पानी में झाँक रही थी। प्रकाश ने उसे पुकारना चाहा; किन्तु कुछ सोचकर रुक गया और टकटकी बाँधकर उसे देखने लगा। वह प्राकृति की गोद में खिला हुआ एक अलौकिक फूल लग रही थी···वह फूल जिसने केवल ओस का मधुर अमृत ही पिया हो, जिसकी सुगंध पूरे वातावरण को रोमांचित कर रही हो।

पत्थरों में रुके पानी में अंगूरों का एक बड़ा-सा गुच्छा था। रत्ना हर थोड़े समय पश्चात् उसमें से एक अंगूर तोड़ती और मुंह में रख लेती। प्रकाश यूं ही खड़ा उसको देखता रहा और जब न रुक सका तो दबे-पाँव धीरे-से उसके पीछे जा रुका। रत्ना अपने ध्यान में मग्न उठ खड़ी हुई और अंगूरों का गुच्छा हाथ में उठाकर मुंह की ओर ले जाने लगी। इससे पूर्व कि वह गुच्छे को मुंह तक ले जाती

प्रकाश ने पीछे से हाथ बढ़ाकर उसे छीन लिया। रत्ना की हल्की-सी चीख निकल गई और वह पानी में लड़खड़ाकर गिरने लगी थी कि प्रकाश ने उसे अपनी बाँहों में थाम लिया। यह सब इतना अचानक हुआ कि रत्ना को मुड़कर देखने का अवसर ही न मिला कि कौन आया था। उसकी आँखों में अँधेरा-सा छा गया था। प्रकाश ने उसका नाम लेकर पुकारा। रत्ना ने मोटी-मोटी आँखें उठाकर ऊपर देखा और बोली—

"आप···!"

"हाँ···डर गईं न···"

"छोड़िये···"

"यूँ नहीं···ठहरो! मुझे सँभलने दो पहले वरना पानी में गिर जाओगी।" प्रकाश ने उसे पत्थर पर बिठा दिया और बोला—

"आज यह क्या सूझी जो मुँह अँधेरे घर छोड़ दिया?"

"सोचा, घर में रही तो कोई आन धमकेगा और जान छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा।" रत्ना ने प्रकाश के कंधे का सहारा लिया और खड़ी हो गई।

"कल ही कह दिया होता तो इतना इन्तज़ार न करना पड़ता।"

"लेकिन, इसकी किसे खबर थी······वह तो घर लौटने पर रात को दावतनामों का ढेर-सा लगा हुआ मिला;" रत्ना ने उत्तर दिया।

"आज शाम सेठजी के यहाँ भी पार्टी है।"

"हाँ, है···पर मैं नहीं जा रही······और आप!" उसने प्रश्न-सूचक दृष्टि से प्रकाश की ओर देखा।

"जैसे तुम कहो।"

"मेरा क्या···आप अपनी मर्ज़ी के खुद मालिक हैं।"

"मैं तो न जाऊँ, पर सेठजी मानेंगे नहीं···"

"क्यों?" उसने अनजान बनते हुए पूछा।

"वह घर पर बैठे तुम्हारी राह देख रहे हैं।"

"तो देखते रहें...यहाँ घर ही कौन जाएगा !"

"तो कहाँ रहोगी ?"

"यहीं...इसी टापू में..."

"अकेली ?" प्रकाश ने बनते पूछा।

"नहीं तो...यह लाइट-हाऊस साथ है......और फिर किसीकी याद भी..."

"कौन है वह खुशनसीब ?"

"कोई है.. जो हर वक्त दिल में बसता है...दिल का पासबान ही समझिये।"

"हमारी मुलाकात न करवाओगी ?"

"डरती हूँ......कहीं जल न उठियेगा..."

"नहीं, ऐसा न होगा।"

"तो ठीक है......एक दिन हम उससे आपकी मुलाकात करा ही देंगे।"

"कब ?"

"घबराइये नहीं, वह वक्त भी आ जाएगा ;" रत्ना ने प्रकाश का हाथ थामते हुए कहा और फिर बोली ; "चलिए !"

"कहाँ ?"

"मेरे साथ आइये, कहीं आपका इन्तज़ार हो रहा है ;" रत्ना ने प्रकाश का हाथ थामा और उसे लाइट-हाऊस के आँचल में ले आई। यहाँ कालीन पर खाने का सामान रखा था। दोनों बैठ गए।

"भूख तो आपको खूब लगी होगी ;" रत्ना ने हाथ में पकड़े गुच्छे से अंगूर तोड़ते हुए कहा।

"भूख तो नहीं...हाँ, प्यास ज़रूर लगी है।"

"तो सोचते क्या हैं ?" उसने समुद्र में उठती लहरों को संकेत करके कहा ; "आपके चारों तरफ़ पानी-ही-पानी है, शौक कीजिये।"

"हाँ, रत्ना ! मैं भी सोचता हूँ...इतना पानी होते हुए भी मैं प्यासा हूँ।"

"मैं कुछ मदद कर सकती हूँ ?"

"इसी उम्मीद पर तो जी रहा हूँ ?"

"तो देखिये, वह सामने वाले गढ़े में से पी लीजिये।"

"वह तो समुद्र का खारी पानी है...कड़वा।"

"मैंने तो सुना था आप कड़वा पानी पसन्द करते हैं।"

"तुम यही चाहती हो तो मैं यह भी पी सकता हूँ।"

"यह भी मुझ पर अहसान है...!" उसके होंठों पर चंचल मुस्कान खेल गई।

"नहीं, इस खयाल से कि तुम्हें देखकर पानी मीठा हो गया होगा।"

"तो जाइये ! देखते क्या हैं ?"

प्रकाश धीरे-से उठकर गढ़े के पास चला गया। उसने मुड़कर देखा, रत्ना हँस रही थी। परन्तु, आँखें मिलते ही वह तुरन्त गम्भीर हो गई और हाथ से ओक बनाकर संकेत द्वारा उसे पानी पीने को कहने लगी।

प्रकाश उसके वार्त्तालाप के चक्कर में फँसा यहाँ तक आ गया था। और अब इस प्रतीक्षा में था कि कब रत्ना उसे आवाज़ देकर पानी पीने से मना कर दे, क्योंकि समुद्र का कड़वा पानी पीने का हौसला उसमें न था। वह प्रतीक्षा करता रहा, पर रत्ना की आवाज़ न आई। कुछ सोचकर वह झुका और दोनों हाथ पानी में डाले। एकाएक वह चौंक गया। पानी में किसी चीज़ की झलक देखकर वह घबरा गया। पानी के झाग में से उसे बाहर खींच लाया, पर यह क्या ? उसके हाथ में विलायती-मदिरा की बन्द बोतल थी।

रंगीन बोतल...भीगा मौसम...महकता वातावरण और प्यार का साथ...। वह इन्हीं विचारों में खोया था कि हल्की-सी हँसी ने उसके विचारों का ताँता तोड़ डाला...रत्ना हँस रही थी कदाचित्, वह उसकी रुचि का उपहास उड़ा रही थी।

प्रकाश ने पीछे मुड़कर देखा तो रत्ना और भी हँसने लगी, फिर भी प्रकाश गम्भीर रहा और मदिरा की बोतल थामे रत्ना के पास लौट

आया। ज्योंही उसने झुककर बोतल धरती पर रखी, रत्ना झट से बोली—

"क्यों···मैंने ठीक कहा था न···!"

"क्या···?" प्रकाश ने क्रोध में भरे लापरवाही से पूछा और पास ही बैठ गया।

"यही कि आपको कड़वा पानी अच्छा लगता है।"

"लेकिन, यह ह्विस्की की बोतल यहाँ लाया कौन ?"

"नाचीज़···रत्ना ;" और वह पास सरकते बोली।

"क्यों ?"

"सोचा, आपकी प्यास मिट जाएगी···और मैं साकी बन जाऊँगी।"

"लेकिन, तुम तो इसे नफ़रत की निगाह से देखती थीं !"

"नज़र तो अब भी वही है···"

"तो यह इम्तियाज़ कैसे ?"

"उसके पीने वाले से तो नफ़रत नहीं···"

"रत्ना !" प्रकाश ने काँपते होंठों से पुकारा। फिर वह सामने बैठी रत्ना को देखकर झेंप गया·· लाल रंग का ब्लाउज़ व चुन्नी ओढ़े, उस पर काली सलवार में वह सुन्दरता की जीती-जागती तस्वीर लग रही थी···गुलाबी होंठ···मद-भरे नयन और घटा से लहराते केश··· हाथ में मदिरा···सामने भरपूर सौंदर्य···भला ऐसे में कोई पागल न हो जाये तो क्या करे ! वह जड़वत्···मूर्ति बना उसे देखता चला गया।

रत्ना ने उसे यूँ एकटक देखते पाया तो बोली—"सोचा, आज बड़ा दिन है···यह अंगूर का रस हर महफ़िल की रौनक होगा, और आप किसी ऐसी महफ़िल में खो गये तो कहाँ ढूंढूंगी ?"

"इसीलिए तो इसे यहाँ ला रखा है···यदि खो भी जाऊँ तो तुम्हारी ही महफ़िल में।"

"हूँ···"

"तुम्हारा क्या ख्याल है, यह नशा दुनिया का सबसे बड़ा नशा है।"

"सुना तो ऐसा ही है।"

"लेकिन, दरअसल ऐसा नहीं है," प्रकाश गम्भीरतापूर्वक बोला।

प्रकाश ने तिरछी दृष्टि से रत्ना को देखा और फिर मदिरा-भरी बोतल को···साथ ही उस समुद्र को भी जिसकी तरंगें उछल-उछलकर चट्टानों से टकरा रही थीं। रत्ना अभी उसके मनोभाव पढ़ने का प्रयत्न कर ही रही थी कि प्रकाश के होंठों पर मुस्कान की एक रेखा खिच गई···उसने मदिरा की बोतल समुद्र में फेंक दी···एक उछाल आया और बोतल चट्टान से टकराकर टूट गई।

"यह क्या ?" रत्ना मानो स्वप्न से जगी।

"दुनियाँ में इससे बेहतर सरूर भी मौजूद है।"

"कौनसा ?"

"मुहब्बत का··" प्रकाश ने प्यार-भरी दृष्टि से रत्ना को देखते हुए कहा। वह अपने को झुठला न सकी और उसने लाज से आँखें झुका लीं। प्रकाश लेटकर लहरों का नृत्य देखने लगा।

कुछ देर बाद रत्ना ने टिफ़न खोला और खाना लगाने लगी। फिर वहाँ से उठकर वह लाइट-हाऊस तक पहुँची और नल पर लटकी पानी का छागल उतारकर ले आई। दोनों मौन थे।···

फिर रत्ना ने पूछा, "अब क्या इरादा है ?"

"कैसा इरादा ?"

"पहले प्यास बुझाइयेगा या भूख ?"

"जैसा तुम फ़रमाओ।" प्रकाश ने धरती पर कुहनी टिकाते हुए कहा।

"मेरी मानिये दोनों को एक साथ मिटा लीजिए।" रत्ना ने चंचल दृष्टि से प्रकाश की ओर देखा और दोनों हँसने लगे।

प्रकाश उठ खड़ा हुआ और दोनों खाने पर यूँ जुट गये जैसे कई दिनों के भूखे हों। खाने से पूर्व दोनों को प्रेम की नई-नई बातें सूझ रही थीं···श्रृंगार-रस में डूबे हुए शब्द···और अब पेट-भर जाने पर

वह सब बातें विसराकर उसी कालीन पर लेट गये।

दोपहर ढल चुकी थी। सूर्य बादलों की ओट में आँख-मिचौनी खेल रहा था। धीरे-धीरे उनकी पलकें बोझल होने लगीं···और नींद ने अपना आधिपत्य जमा लिया। दूर बम्बई के बाज़ारों और गलियों में बड़े दिन की धूम-धाम थी। जानें कितनी रंग-सभाएँ···कितने क्लब रत्ना की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

जब प्रकाश की आँख खुली तो संध्या हो चुकी थी। बादल छँट गये थे और हवा का भीगापन भी कम हो गया था। सूर्यास्त की लालिमा से मानो समुद्र में आग-सी लग रही थी। उसने कालीन पर लेटे-लेटे ही करवट ली और रत्ना को समीप न पाकर इधर-उधर देखने लगा। खाने का सामान सँभाला हुआ था···रत्ना कुछ दूर रेत पर बैठी समुद्र के दृश्य में खोई हुई थी।

प्रकाश उठकर उसके समीप चला गया।

"सो चुके क्या ?" रत्ना ने मुस्कान के साथ प्रश्न किया।

"हाँ, लेकिन तुम !"

"कोशिश तो की, पर कमबख्त नींद न आई।"

"ओह ! तब से यहीं बैठी हो ?"

"वहाँ बैठी क्या करती······सोचा, लहरों से हवाओं का खिलवाड़ ही देख लूँ···"

"मुझे जगा लिया होता ;" प्रकाश ने झुककर पानी के दो-चार छींटे मुँह पर मारे और जेब से रूमाल टटोलने लगा। शायद वह रूमाल कहीं भूल आया था। रत्ना ने झट अपने सिर पर बँधा रूमाल खोलकर उसे थमा दिया। प्रकाश पहले तो हिचकिचाया, फिर उससे रूमाल ले मुँह पोंछने लगा।

"मेरी नींद तो उचट ही गई थी, भला आपकी क्यों खराब करती।"

"खैर···छोड़ो, अब वापस लौटने का कब इरादा है ?"

"बस···घबरा गये। आप तो दिन-भर यहीं रहने का वादा कर चुके हैं ?"

"दिन का···रात का नहीं।"

"अभी तो शाम ही हुई है···आइये, घूमने चलें।"

"कहाँ ?"

"वह सामने···उस टापू तक ;" रत्ना ने उस ओर संकेत करते कहा, जहाँ समुद्र में काली चट्टानों पर खण्डहर से दीख रहे थे।

"वहाँ क्या रखा है···यह काली चट्टानें व खण्डहर;" प्रकाश बोला।

"मुझे वीराने अच्छे लगते हैं।"

"इसीलिए तो महफिलों से भाग आई हो।"

"हूँ !"

"पैदल जाने से जाते-जाते अन्धेरा हो जाएगा, कहो तो किश्ती खोल लें।"

"ठीक है···चलिये ;" रत्ना ने उठते हुए कहा।

अब समुद्र-तल कुछ शान्त हो गया था। दोनों धीरे-धीरे नाव खेते उन खण्डहरों की ओर चुपचाप जा रहे थे, केवल चप्पू चलाने की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

"क्या सोच रही हो ?" प्रकाश ने गुमसुम बैठी रत्ना पर प्रश्न किया।

"अपनी फ़िल्मी दुनियाँ की बात···" वह कुछ रुककर फिर बोली—"सोचती हूँ कि क्यूँ न अपनी एक फिल्म-कम्पनी बना लूँ।"

"खयाल तो बुरा नहीं ;" प्रकाश ने उसकी बात का समर्थन किया और चप्पू रोकते बोला "नाम···रुपया···फ़न सब-कुछ तो है अपने पास।"

"क्या आप मेरा साथ देंगे ?" रत्ना ने कोमल स्वर में पूछा।

"मैं···" वह बौखलाया ; "कैसा साथ ?"

"बराबर का···पार्टनर···"

"मुझे क्यूँकर इन्कार होगा···लेकिन···

"लेकिन···वेकिन कुछ नहीं···हम दोनों आज़ाद रहेंगे···न किसी

का दबाव होगा न गुलामी ही रहेगी···और दुनियाँ के सामने वही रखेंगे जो हम चाहते हैं।"

"सेठजी क्या कहेंगे ?"

"सेठजी !" क्षण-भर के लिए रत्ना के मुख पर लालिमा दौड़ गई। फिर कहने लगी ; "कहने दीजिए यह तो दुनियाँ का दस्तूर ही है···और सच तो यह है कि अब उनके साथ काम करने को जी नहीं चाहता ;" रत्ना गम्भीर होकर बोली।

"क्यों ? अगर वह हमारी मदद न करते···तो आज···"

"उनकी आँखों में कुछ अब मैल आ गया है।"

"मैल !" प्रकाश के हाथ से चप्पू छूटते-छूटते बचे। उसकी प्रश्न-सूचक दृष्टि रत्ना के मुख पर जम गई।

"एक गुस्ताखी की है···जुर्रत की है उन्होंने···रत्ना ने धीरे-से कहा।

"क्या ?" किश्ती किनारे पर लाते प्रकाश ने पूछा।

"शादी की पेशकश वह मुझसे ब्याह करना चाहते हैं ;" रत्ना के मुख पर क्रोध झलकने लगा। उसने किश्ती के रस्से को किनारे पर फेंका और नीचे उतर आये। प्रकाश ने लपककर रस्सा थाम लिया और उसे एक पत्थर से बाँधते हुए खिलखिलाकर हँसने लगा।

यह हँसी का कौनसा वक्त है···?" रत्ना झल्लाई।

"कितनी खुशनसीब हो रत्ना " वह किश्ती बाँधकर और उसके समीप आकर बोला, "इससे अच्छा मौका और कौनसा हो सकता है···दौलत तुम्हारे कदम चूमेगी·· और इज्जत सिर पर मँडरायेगी। और फिर नई फ़िल्म-कम्पनी खड़ी करने की क्या ज़रूरत है···बम्बई मूवीटोन की मालिक बन सकती हो।" प्रकाश एक ही साँस में यह सब कह गया। रत्ना यह सुनकर सटपटा गई और झुँझलाकर भाग गई। प्रकाश ने उसे पीछे से पुकारा ; किन्तु उसने मुड़कर नहीं देखा। प्रकाश भी उसी ओर चल पड़ा।

जब वह पत्थरों के खण्डहर में पहुँचा तो रत्ना एक टूटी दीवार का

सहारा लिए रो रही थी। प्रकाश ने रत्ना को यूँ रोते देखा तो उसे बाँहों में भर लिया।

"पगली! इसमें रोने की क्या बात है?"

"रोऊँ नहीं···तो क्या हँसूँ···आप भी मेरे सीने पर बरछे चलाने लगे··"

"यह व्याह-शादी की बातें बरछियाँ हैं क्या? मैं तो तुम्हारे वीराने को बारौनक देखना चाहता हूँ···"

"आप अपने दिल में तो अब तक रौनक न पैदा कर सके···" वह भर्राई हुई आवाज़ में बोली, "तो मेरे दिल की शहादत कैसे दे सकते हैं!"

रत्ना का उत्तर सुनकर वह काँप-सा गया। उसका बन्धन ढीला पड़ गया और वह रत्ना से अलग हो कर उस खण्डहर में सिर झुकाये आगे बढ़ गया। रत्ना ने उसके हृदय पर चोट लगाई थी। खण्डहर से निकल वह बाहर रेत पर बैठकर कुछ सोचने लगा। रत्ना कुछ क्षण वहीं खड़ी रही, फिर आँखें पोंछकर उसके पास आ बैठी।

"जानते हैं कि मैंने सेठजी को क्या जवाब दिया?"

"क्या?" अपने विचारों में खोया-सा प्रकाश बोला।

"औरत ज़िन्दगी में सिर्फ़ एक बार ही दिल देती है···सो मैं दे चुकी··" रत्ना ने भोलेपन से कहा।

प्रकाश इस पर मुस्करा दिया और बोला—

"मर्दों के दिल के बारे में तुम्हारा क्या ख़याल है?"

"हरजाई···जिसने दो घड़ी हँसकर बोला···उसीके हो लिये···"

"किसीके दिल को परखना सहल नहीं—ख़ैर, जाने दो इस बात को, तुम तो फ़िल्म बनाने का ज़िक्र कर रही थीं।"

"आपकी क्या राय है?"

"नेक है···लेकिन बात व्यापार की है···एक बात पहले से साफ़ किये देता हूँ···"

"क्या ?"

"रुपये-पैसे के मामले में ज़रा ढीला हूँ···"

"घबराइये नहीं ! मुझे आपसे एक कौड़ी भी नहीं लेनी ।"

"तो फिर यह पार्टनरशिप कैसी ?"

"मुझे तो सिर्फ़ आपका साथ चाहिए···बस···आप मेरे करीब रहें ···मेरे लिए यही बहुत है।"

"तो पहली फ़िल्म की तैयारी कब से होगी ?"

"कल से ।"

"सेठजी की नौकरी···?" वह कपड़े झाड़कर उठ बैठा ।

"वह हम दोनों को छोड़नी होगी ।"

रत्ना भी खड़ी हो गई और दोनों धीरे-धीरे उन खण्डहरों के आस-पास टहलने लगे ।

"पहली फ़िल्म किस मौज़ू पर होगी ?"

"मुहब्बत पर···कोई ऐसी दिलकश दास्तान हो···जो मुद्दत तक दिलों पर अपना असर छोड़ जाये ।"

"और मौसीकी···संगीत ?" प्रकाश ने पूछा ।

"वह तो फ़िल्म की सबसे बड़ी कशिश होगी ।"

"लैला-मजनू कैसा रहेगा ?"

"नई सदी में यह ज़ाविया कुछ जँचता नहीं···बहुत पुरानी कहानी है और पहले दो बार फ़िल्माई जा चुकी है। कोई ऐसी कहानी हो जो तालीमयाफ़्ता तबके में भी खप सके।"

"मउर-खय्याम के बारे में क्या खयाल है ?

"फ़ल्सफ़ा ज्यादा है और मुहब्बत कम···आम लोगों की समझ से बाहर है ।"

"तब तो एक ही ऐसी कहानी है जो तुम्हारे खयालात के मुताबिक है ।" प्रकाश ने कहा ।

"कौन-सी ?" रत्ना ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

"ताजमहल···शाहजहान और मुमताज बेगम की मुहब्बत की दास्तान।"

"खयाल तो अछूता है···"रत्ना सोचती हुई आगे बढ़ गई।

शाम धुँधली होती जा रही थी। खंडहर की दीवारों की गहरी छाया पानी में पड़ रही थी। दोनों अपने ध्यान में खड़े नई फ़िल्म का शीर्षक सोच रहे थे। धीरे-धीरे सूरज बिलकुल डूब गया और चन्द्रमा यूँ उभर आया मानो वह सूरज के डूबने की प्रतीक्षा में ही था।

"एक कहानी मुझे सूझी है।" रत्ना ने लम्बे मौन को एकाएक तोड़ा।

"कौन-सी ?"

"देवदास की कहानी···क्या ख़याल है आपका ?"

"अच्छी कहानी है···मुहब्बत है, मौसीकी है और सबसे बढ़कर एक दर्द है ख़ास···हर आदमी समझ सकता है···हर मियार पर पूरी उतरती···लेकिन···" वह कहते-कहते रुक गया।

"लेकिन क्या···" रत्ना ने पूछा।

"देवदास के किरदार को हिन्दोस्तान में एक ही शख्स निभा सकता है और उसका सेठजी के साथ दो साल का कांट्रेक्ट है।"

"आपका इशारा कुन्दन की तरफ़ है ?" रत्ना ने पूछा।

"हाँ, कुन्दन ही बस देवदास के रोल को निभा सकता है।" प्रकाश ने उत्तर दिया।

"लेकिन मेरे ख़याल में कोई और भी ऐसा आदमी है जो देवदास से कम नहीं।" रत्ना ने बाँह को हल्का-सा झटका दिया और काँच की चूड़ियाँ खनखना उठीं।

"कौन है वह ?" प्रकाश ने मस्तिष्क पर बल देते पूछा।

क्षण-भर में ही उसके मानस-पटल पर चित्रपट के सब मुखड़े अंकित हो गए······उसकी समझ में न आ रहा था कि देवदास के लिए और कौन हो सकता है ?

"उसके चिन्तित मुख को निहारते वह धीरे-से बोली; "आप···!"

"आप···!" प्रकाश अनायास हँसते बोला, "क्या अब मुझ से ऐक्टिंग कराने का इरादा है ?"

"जी···मेरे खयाल में तो आपसे मौजू और कोई न होगा।"

"शायद तुम इसलिए कह रही हो कि मेरी जिन्दगी भी देवदास की तरह है, और एक नाहमवार रास्ते पर रेंग रही है।"

"यूँ ही समझ लीजिए···"

"हमारी ज़िन्दगी को ही पेश करना है, तो मेरी मानो···"

"क्या ?"

"एक ऐसी अछूती मुहब्बत की दास्तान पेश करो, जो लोगों के वहमोगुमान से दूर हो···लेकिन ज़िन्दगी-भर उनके दिलों में आहट बनकर चलती रहे।"

"कहाँ है ऐसी दास्तान···?"

"मेरे पास···"

"सुनाइये !"

"अभी नहीं।"

"क्यों ?"

"रात पाँव फैला रही है···और दास्तान बहुत लम्बी है।"

रत्ना ने और आग्रह न किया। किश्ती चप्पुओं के सहारे किनारे की ओर बढ़े जा रही थी। चाँद उभरने से स्थिर लहरों में चंचलता आ गई थी···शायद ऐसी ही हलचल उनको भी अशान्त कर रही थी।

"रात-भर बेचैन रहूँगी···" रत्ना ने मौन को तोड़ा।

"क्यों ?"

"इतना तो बता दीजिए कि वह कैसी दास्तान है ?"

"लैला-मजनू की दास्तान से ज़्यादा पुरदर्द···उमर-खय्याम की ज़िन्दगी से ज़्यादा गहरी और देवदास की कहानी से ज़्यादा अल्मियाँ (दुखदायी)···उन दो पाक दिलों की मुहब्बत जो जन्मों तक एक-दूसरे के लिए तड़पते रहेंगे···।"

यह कहते हुए प्रकाश दूर क्षितिज में देखने लगा। उसके मुख पर एक-एक क्षण में कई रंग बिखरकर मिट गये...शायद उसके मनो-मस्तिष्क पर उस अछूती दास्तान की स्मृतियाँ एकत्र हो रही थीं।

रत्ना मौन बैठी तरंगों की उछालें देखती रही...यह तरंगें चाँद की किरणों के साथ-साथ बढ़ती जा रही थीं...यह तरंगें उसके अपने मन की प्रतीक थीं।

सोलह

"तो क्या यह आपका आखरी फ़ैसला है ?

"जी···रत्ना ने कुर्सी पर आराम से पीठ टिकाते सेठजी को उत्तर दिया।

"इतना तो सोचो·· तुम्हारे एक जनून के लिए मेरा लाखों का नुक़सान हो जायेगा।"

"लेकिन मैं आपकी 'सूरदास' पूरी कर रही हूँ।"

"उसके बाद ?"

"आप नई हीरोइन की तलाश कर सकते हैं।"

"वह तो मैं समझता हूँ···लेकिन रत्ना के बग़ैर यह कम्पनी कैसे चलेगी ?"

"जैसे पहले चलती थी···और फिर आपको एक ही हीरोइन पर तो नहीं रहना चाहिए·· फ़र्ज़ कीजिए मैं मर ही जाऊँ।"

"छि-छि···कैसी बात करती हैं···"

"कुछ हो सेठजी मैंने फ़ैसला कर ही लिया है···अब आप अपनी फ़िल्म पूरी कीजिए।"

"फिर सोच लीजिए फ़िल्म बनाना इतना आसान नहीं···लाखों चक्कर हैं···आप अभी भोली हैं और प्रकाश नादान···आर्ट और व्यापार का कोई मेल नहीं।"

"लेकिन सुर और साज़ का तो है·· अच्छा छोड़िए···अब इजाज़त दीजिए·· " रत्ना ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

"मिस रत्ना···" सेठजी ने खड़े होकर उसे रोकने का प्रयत्न किया।

"जी···" वह रुकते बोली।

"क्या वह फ़िल्म मेरी कम्पनी नहीं बना सकती? आप···जो हिस्सा आप कहें मुझे मन्जूर होगा।"

"सेठजी! मुआफ़ कीजिए मैं यह फ़िल्म अपनी तिजोरी भरने के लिए नहीं बना रही···अपनी तमन्नाएँ पूरी करने के लिए बना रही हूँ···दिल की तस्कीन के लिए।"

रत्ना यह कहकर चली गई और सेठजी को एक अंधकार में छोड़ गई। वह जानते थे कि रत्ना और प्रकाश के बिना उनकी फ़िल्म कम्पनी कुछ नहीं। उन दोनों के चले जाने पर कम्पनी का महत्व समाप्त हो जाएगा, उनकी साख गिर जाएगी और उन्हें जीने के लिए फिर स्टंट फ़िल्मों का आसरा लेना पड़ेगा। आज उनका नाम चोटी के फ़िल्म-निर्माताओं में लिया जाता है और कल वह एक साधारण व्यक्ति रह जाएँगे।

रत्ना की गाड़ी तेज़ गति से चल रही थी। वह नायिका से प्रोड्यूसर बनने के स्वप्न देख रही थी। उसके मस्तिष्क में आशाओं ने विश्वास बनकर अँगड़ाई ली। सुलतानपुर की साधारण ग़रीब लड़की देश के करोड़ों व्यक्तियों के हृदयों पर आधिपत्य जमा चुकी थी···गुमनामी के अंधकार में पली अपढ़ लड़की अब बम्बई की हर सभा, हर क्लब का उजाला बनी हुई थी···वह सोचने लगी, कितना अन्तर है उसके पहले और अबके जीवन में···भाग्य ने उसे कितना उठाया है···कितना परिवर्तन!

उसका समस्त जीवन बदल गया था; किन्तु उसके मन की कोमलता न बदली थी···उसका प्रकाश के प्रति प्रेम न बदला था। उसके हृदय में प्रकाश की छवि थी, धड़कन में उसकी स्मृति थी··· उसका सब-कुछ प्रकाश ही था। नई कम्पनी का निर्माण भी वह अपने

लिए नहीं बल्कि प्रकाश के लिए ही कर रही थी...उसके भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए...उसका स्वयं क्या था...वह सुन्दर थी, जवान थी और सफल अभिनेत्री थी, उसके लिए पैसा बनाना कौन-सा कठिन था; किन्तु प्रकाश के लिए यह सम्भव न था। वह कलाकार था, जनूनी था...अपनी धुन में खोया रहता था, रुपया-पैसा जोड़ना उसके बस का रोग न था। वह खुल्लमखुल्ला अपने पैसे से प्रकाश की सहायता न कर सकती थी...इसे वह स्वीकार भी न करता...इसीलिए उसने कम्पनी खोलने का निश्चय किया था। इससे प्रकाश की धन द्वारा सहायता भी हो सकती थी और उसका भविष्य भी सुरक्षित हो सकता था।

उसका जीवन भी बड़ा विचित्र था...प्रकाश उसके जीवन का केन्द्र था, उसका सब-कुछ वही था; किन्तु फिर भी उसे उस पर तनिक अधिकार नहीं था...बड़ी अनोखी विवशता थी, समाज के बन्धनों की मजबूरी।...उसके जीवन-मार्ग पर भाग्य ने फूल बिछाकर उसमें ऐसे शूल रख दिए जिन पर से लाँघना किसी प्रकार सम्भव न था। जब भी वह प्रकाश के कुछ निकट खिची आती; जमना का विचार बिजली-सा बनकर उसे फिर पीछे हटा देता। उसे जमना का भी ध्यान आता...वह उसके धर्म और समाज द्वारा दिए गए अधिकार को कैसे छीन सकती थी!" प्रकाश और जमना का सम्बंध एक ऐसी ज़ंजीर थी, ऐसा बंधन था जिसे कोई तोड़ न सकता था...इस बंधन को अपने स्वार्थ के लिए तोड़ने का प्रयत्न भी एक महाविनाश का कारण बन जाएगा...इस कल्पना से ही वह काँप जाती।

एकाएक उसकी आँखों में आँसू भर आए, सामने की सड़क धुंधली दिखाई देने लगी और वह सामने से आती हुई एक गाड़ी से टकराते-टकराते बची। उसने गाड़ी की गति को धीमा किया और पलकों को पोंछकर फिर बढ़ने लगी। स्वयं ही उसे अपने मानसिक असमंजस पर हँसी आ गई...वह सोचने लगी उसका जीवन भी तो ऐसा ही है निरन्तर

मौन-रुदन में कभी-कभार एक-आध छनक हँसी की।

नई फ़िल्म कम्पनी का उद्घाटन हो गया। प्रकाश के लाख प्रयत्न पर भी कि वह उसके नाम को गुप्त ही रहने दे, नई कम्पनी का नाम प्रकाश फ़िल्म्ज़ रखा गया। रत्ना उसे यही प्रेम-उपहार दे सकती थी...उसके मौन-प्यार का, उसकी अस्पष्ट तड़प का...उसके प्रकाश से एक अलौकिक आत्मिक सम्बन्ध का यही एक चिन्ह रह जाएगा... एक स्थायी स्मृति-चिन्ह।...कम्पनी की स्थापना हो गई और प्रथम फ़िल्म की शूटिंग की तैयारी होने लगी।

फ़िल्म के लिए चुनी गई कहानी प्रेम की एक अनोखी कहानी थी। कहानी का घटनास्थल जयपुर का राज-भवन, कलकत्ता की अँधेरी ग़लियाँ या बम्बई की विशाल कोठियाँ और उसके होटल न थे बल्कि एक उजड़ी हुई बस्ती में टूटे-फूटे खंडहर थे। इसके लिए उपयुक्त स्थान लाइट-हाउस के आस-पास के खंडहर और समुद्र की उछलती विफ़रती लहरें ही हो सकती थीं। न जाने क्यों जब से प्रकाश रत्ना को मेघ-मल्हार की धुन के लिए इस स्थान पर लाया था उसे इससे एक असा-धारण लगाव हो गया था...वह प्रायः अपना अवकाश का समय यहीं बिताती...अकेली बैठी समुद्र की लहरों में कल्पना की नावें बहाती रहती। यह खंडहर उसके अप्रत्यक्ष मन में बस गए थे। कहानी एक पवित्र आत्मा की थी जो शताब्दियों तक इन्हीं खंडहरों में अपने प्रियतम को मिलने के लिए भटकती है, तड़पती है; किन्तु उसकी तपन नहीं बुझती...उसके मन का मीत भिन्न-भिन्न रूप में संसार में कई बार जन्म लेकर आता है...कोई आकर्षण-शक्ति उसे खींचकर यहाँ भी लाती है; किन्तु किसी कारण वह निराश लौट जाता है, अपनी बिछुड़ी हुई आत्मा से मिल नहीं पाता...यूँ मरण-जीवन के कई चक्कर चलते हैं और फिर भाग्यवश एक जीवन में दोनों आत्माओं का मिलन हो जाता है...वह व्यक्ति उस बिछुड़ी हुई आत्मा को पहचानता है और उसके संकेत पर उसके पीछे-पीछे चलता इन्हीं खंडहरों में खो जाता है—इसके

पश्चात् वह भटकती हुई आत्मा कभी इन खंडहरों में तड़पती नहीं पाई गई...किसीने उसे नहीं देखा।

कहानी रत्ना को बहुत पसन्द थी। प्रकाश दिन-रात उस आवाज़ की धुन बनाने में खोया रहता जिस पर इस कहानी का आधार था— उस अतृप्त आत्मा की आवाज़ जो शताब्दियों तक इन खंडहरों में भटकती अपने प्रीतम को पुकारती रही...वह आवाज़ जिसमें वेदना और आशा दोनों ही थीं...जिसमें एक अटूट अद्भुत प्रतीक्षा थी। प्रकाश इस गीत में ऐसे प्राण फूंक देना चाहता था जो इसे अमर बना दें... उसकी सब धुनों से उत्तम। ऐसा गीत, ऐसी धुन जो करोड़ों व्यक्तियों को वही वेदना, वही तड़प दे जो उस अतृप्त-आत्मा में थी। रत्ना स्वयं यही चाहती थी...यह आवाज़ वास्तव में उसीके मन की आवाज़ थी...और कौन जाने यह कहानी उसीका जीवन हो...सचमुच...। फ़िल्म का अधिकतर काम वह यहीं करती, इसी टापू पर, लाइट-हाउस के आंचल में, इन खंडहरों में, चट्टानों में...समुद्र-तट की रेत पर... स्टूडियो और घर में होते हुए भी उसकी आत्मा यहीं विचरती रहती।

रत्ना ने जब अपनी गाड़ी को प्रकाश की गाड़ी के बिलकुल साथ ला खड़ा किया तो उसके मन में प्रसन्नता की तरंग यूँ उठी मानो किसी वर्षों के बिछुड़े हुए मित्र के आने की सूचना पा ली हो। प्रकाश लाइट-हाउस से थोड़ी दूर पत्थरों पर बैठा अपने ध्यान में मग्न कुछ गुनगुना रहा था। शायद वह गीत को संगीत का रूप दे रहा था। पाँच-चार प्रकार के साज़ उसके पास ही पत्थरों पर रखे थे। रत्ना ने दूर से उसे देखा और टिफ़िन उठाकर दबे-पाँव धीरे-से उसके पीछे जा खड़ी हुई। प्रकाश एक साज़ की हल्की धुन पर गीत के बोल गुनगुना रहा था। रत्ना कुछ देर खड़ी उन बोलों को सुनती रही और फिर एकाएक उसी लय में उसके साथ गुनगुनाना आरम्भ कर दिया। प्रकाश ने चौंकते हुए साज़ रख दिया और मुड़कर देखा। रत्ना को अपने पीछे खड़ा

देखकर वह मुस्करा पड़ा और खड़ा होकर उसके हाथ से टिफ़िन थाम लिया।

"कहिए धुन पूरी बन गई?" रत्ना ने मुस्कान का उत्तर मुस्कान से दिया।

"वह क्या पूरी होगी...पेट में तो चूहे दौड़ रहे हैं।"

"वाह, क्या कहने आज के कलाकार के...बस पेट का फ़िक्र है!"

"अगर कला ही पेट भर सकती तो मैं सुजानगढ़ और तुम सुलतानपुर छोड़कर क्यों आतीं?"

रत्ना चुप हो गई और दोनों लाइट-हाउस की सीढ़ियों पर जा बैठे। खाना आज बड़ा सादा प्रकार का था...कुछ सैंडविच, नमकीन बिस्कुट और फल थे। प्रकाश यह अल्प-सा आहार देखकर चुप न रह सका और बोला—

"यह क्या?"

"खाना तैयार न था...बाज़ार से यही उठा लाई...क्या कम होगा?"

"नहीं तो...बल्कि अच्छा है...ऐसा खाना खाने से सुस्ती नहीं आती।" प्रकाश यह कहते हुए खाने पर झपट पड़ा और रत्ना को चुपचाप बैठे देखकर बोला—

"तुम न खाओगी?"

"आप खा लीजिए...मैं बाद में खाऊँगी।"

"क्यों?"

"कहीं कम न पड़ जाए।" वह धीरे-से बोली।

"मुझे पेटू समझ रखा है क्या?"

"हाँ..." रत्ना ने चंचलता से कहा और खाने लगी।

खाना समाप्त हुआ तो दोनों फिर समुद्र के किनारे आ बैठे। प्रकाश उस धुन के बोल दोहराने लगा और बोला—

"क्यों···कैसे हैं ?"

"बोल तो खूबसूरत हैं लेकिन धुन अभी समझ में नहीं आई।"

"इसी कोशिश में लगा हूँ···कौनसा बहाव हो कि यह लफ़्ज़ कानों से उतरते ही दिल की तह तक जा पहुँचे।"

"मौका कैसा है···बताइये तो···"

"खण्डरात-ही-खण्डरात···सुनसान···रात का सन्नाटा···नीला खुला आसमान और उसमें सितारों का ज़ाल बिछा हुआ······खण्डरात में से आवाज़ उभरती है और दूर तक समुद्र की लहरों पर नाचती चली जाती है।"

"तो सुनिये···यह बोल मैं गुनगुनाती हूँ—

रत्ना घुटने टिकाकर रेत पर बैठ गई और धीमे स्वर में गाना आरम्भ किया। मधुर स्वर में बोल के शब्द वातावरण में गूँजे। प्रकाश ध्यान से सुनने लगा और फिर टोकते हुए बोला—

"नहीं, यूँ नहीं···लफ़्ज़ों को ज़रा लम्बा खींचकर गाओ···शुरू के बोल धीमे हों और आहिस्ता आहिस्ता-आवाज़ को ऊँचा करती जाओ···हाँ, फिर शुरू करो···"

रत्ना ने गीतों को फिर गाना आरम्भ किया और कई बार और अभ्यास के बाद वह प्रकाश की इच्छानुसार धुन को गाने में सफल हो गई। यद्यपि प्रकाश को पूरी सांत्वना तो न हुई फिर भी उसे विश्वास हो गया कि और कड़े परिश्रम से वह शीघ्र अपने उद्देश्य को पा लेंगे।

"एक बात पूछूँ प्रकाशजी!" रत्ना ने गा चुकने के बाद पूछा।

"पूछो···"

"यह कहानी सिर्फ़ एक दिमाग़ी उपज है···या ऐसा मुमकिन भी है?"

"क्या ?"

"किसीका दूसरे को पाने के लिए बार-बार जन्म लेना।"

"क्यों नहीं···ऐसा हो भी सकता है···सुनने में भी तो आता है।"

'फ़र्ज़ कीजिए···" वह झट बोली, "मैं इस ज़िन्दगी में किसीसे प्यार करती हूँ लेकिन पास होते हुए भी किसी वजह से उसे अपना नहीं सकती—क्या वह मुझे दोबारा दूसरे जन्म में मिल सकता है ?"

"क्यों नहीं—" प्रकाश ने साज़ उठा लिया और रत्ना की आँखों में झाँक कर बोला, "अगर सच्ची लग्न हो—" और फिर रुककर कहने लगा, "दोनों तरफ।"

"दोनों तरफ···" रत्ना ने दोहराया, "लेकिन मैं क्योंकर कह सकती हूँ वह भी मुझे इतना ही प्यार करते हैं जितना मैं उन्हें करती हूँ।"

"आज़मा के देख लो न।"

"ऐसा भी नहीं कर सकती।"

"क्यों ?"

"चन्द मजबूरियाँ हैं···समाज के बन्धन···फ़र्ज़ के बन्धन—ज़माने के बंधन···"

"यह सब टूट सकते हैं···मुहब्बत के सामने कोई बंधन नहीं।"

रत्ना—" प्रकाश ने कुछ बोझल स्वर में उसे आँचल से खींचते हुए पुकारा।

"हूँ—"रत्ना अभी तक मानसिक सन्तुलन न कर सकी थी।

"तो क्या सोचा तुमने ?"प्रकाश के स्वर में एक अनोखा आग्रह था।

"जी···" रत्ना के होंठ थरथराये।

"तुम चाहो तो यह झूठे बन्धन टूट सकते हैं।"

"प्रकाशजी !···" कम्पित स्वर से उसका नाम लेते हुए उसने बड़ी वेदना-भरी दृष्टि से प्रकाश की ओर देखा। वह सिर से पैर तक पानी-पानी हो रही थी। प्रकाश ने उसका आँचल छोड़ दिया। रत्ना ने अनुभव किया जैसे अब वह चाहने पर भी पाँव नहीं उठा सकती। उसने आँचल से वक्ष को ढाँप लिया और पत्थर-सी बनकर खड़ी हो गई।

"जिस मुहब्बत को पाने के लिए तुम मौत को गले लगाना चाहती

हो वह इसी जन्म में मिल सकती···अगर तुम चाहो तो···" प्रकाश बैठे-बैठे बोला ।

"कहा न मुझमें यह बन्धन तोड़ने की हिम्मत नहीं ।" रुकते-रुकते रत्ना ने उत्तर दिया।

"मुझमें तो है···सिसक-सिसककर जीने से तो बेहतर हैं कि हम अपने जज़बात को उनके बहाव पर छोड़ दें···एक हो जायें ।"

"तो क्या होगा ?"

"मैं समझी नहीं ।"

"बादलों के टकरावों में बिजली छिपी होती है जो सब-कुछ फूंक देती है ।" रत्ना ने शब्दों के संकेत में अपना अर्थ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया ।

"लेकिन इन्हीं बादलों में पानी भी है···अमृत है जो खुश्क रेगिस्तान को सब्ज़ाज़ार बना देता है···ऐसे ही हमारी ज़िन्दगी में भी बहार आ सकती है ।"

"कैसे ?" रत्ना ने समीप आते हुए पूछा ।

प्रकाश अभी कोई उत्तर दे भी न पाया था कि रत्ना स्वयं बोली, "मेरे लिए सपनों से हसीन एक घर बनाइयेगा ?"

"क्यों नहीं ?"

"मेरी हर अदा पर जान दीजिएगा ?···" यह कहते हुए रत्ना फिर बैठ गई ।

"रत्ना···!"

"मेरे रास्ते में फूल बिखेरियेगा ?···"

प्रकाश चुप रहा ।

"मेरी पूजा कीजियेगा ?···"

"हाँ रत्ना···"

"लेकिन मेरे आँसुओं का क्या होगा ?" रत्ना फूट पड़ी ।

"इन्हें मैं मोती बनाकर दिल में छिपा लूंगा ।"

"समाज के सामने तो मैं एक रण्डी की बेटी हूँ न !"

"नहीं रत्ना ! ऐसा कहकर तुम अपनी उस पाकीज़ा माँ को ज़लील न करो जिसकी गोद में तुम पली। हो··· जिसने रत्ना नहीं रत्न को जन्म दिया है···तुम सचमुच देवी हो···वफ़ा की देवी हो।"

"समाज के डर से मुझे छोड़ तो न दीजिएगा ?"

"नहीं··· अब तो मौत भी मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकती।" यह कहकर उसने रत्ना की कमर में हाथ डालकर उसे निकट खींच लिया।

"बड़ी मुद्दत से एक तमन्ना थी—" आखों में आए आँसुओं पर कठिनता से अधिकार पाते हुए रत्ना ने कहा।

"क्या ?"

"कह दूँ तो हँसियेगा तो नहीं···"

"नहीं···हो सकता है मैं भी दिल में कोई ऐसी ही तमन्ना लिये बैठा हूँ।"

"जैसे सुर और साज़ के मिलने से इतने बेनज़ीर गीत पैदा होते हैं इसी तरह···" वह कहते-कहते रुक गई। उसका साँस तेज़ हो गया ···उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे यह बात अधूरी ही रहेगी···उसे मन का यह रहस्य प्रगट ही न करना चाहिए था।

प्रकाश कुछ समय उसके मुख पर बदलते हुए रंगों को देखता रहा और फिर बोला—

"हाँ, कहो न···रुक क्यों गई हो ?"

रत्ना ने गम्भीर दृष्टि से उसकी ओर देखा, फिर कुछ लजाई और बड़े धीरे-से शब्दों को होंठों-तले दबाते हुए बोली, "कह दूँ ?"

प्रकाश ने 'हाँ' में सिर हिलाया। वह रुकते-रुकते बोली—

"इसी तरह···इसी मेल से एक जीता-जागता चाँद का टुकड़ा हमारी इस डोर को अमर रखे···यह चिराग़ जलता रहे···एक नये रंग में···दोनों के गुण लेकर।" प्रकाश ने देखा यह कहते हुए रत्ना के मुख

पर वह आभा आ गई थी जो उसने पहले कभी न देखी थी। रत्ना नें बात समाप्त की और दोनों हथेलियों से अपने चेहरे को ढाँप लिया।

प्रकाश ने उसे और अपने समीप खींच लिया और उसके कंधे पर बाँह रखते हुए उसके चेहरे से हाथों को हटाकर बोला—

"रत्ना ! तुमने अपनी नही मेरे दिल की बात कही है।"

"लेकिन जमना···वह क्या कहेगी ?"

"वही जो मैं कहूँगा।"

"औरत चाहे कितनी नेक दिल क्यों न हो···अपने मर्द के पहलू में किसी दूसरी औरत को नहीं देख सकती।"

"तुमने उसके दिल को परखा ही कहाँ है···वह मेरी खुशी के लिए कुछ भी कर सकती है।" प्रकाश ने विश्वासपूर्ण स्वर में कहा।

यह शब्द प्रकाश के मुँह से निकले ही थे कि दूर विजली चमकी और फिर ज़ोर से बादलों की गर्जन हुई। रत्ना डर से प्रकाश से लिपट गई।

प्रकाश ने आकाश की ओर देखा। दूर तक बादल छा रहे थे।

"शायद बादल बरसेंगे।" रत्ना ने प्रकाश से अलग होते हुए कहा।

"नहीं···बादल डरा रहे हैं···वरन् इस मौसम में बम्बई में बारिश कहाँ।"

"ऐसा न कहिए।"

"क्यों ?"

"बम्बई की बरसात और मर्द की जात का कोई भरोसा नहीं।" रत्ना अभी वाक्य पूरा भी न कर पाई थी कि नन्ही-नन्ही फुहार आरम्भ हो गई। दोनों ने मुस्कराकर एक-दूसरे को देखा और साज़ समेटकर लाइट-हाउस के भीतर चले गये।

जमना सवेरे से खाना पका कर प्रकाश की प्रतीक्षा कर रही थी। अब शाम हो गई थी और वह अभी तक न लौटा था। उसने भी आज हठ में आकर खाना नहीं खाया था। यूँ तो प्रातः कार्यों में व्यस्त होनें

के कारण प्रकाश दोपहर का खाना घर में न खाता ; किन्तु आज एक सप्ताह से निरन्तर खाना तैयार होता और व्यर्थ जाता । जमना हर दिन उसे काम पर जाने से पहले समय पर लौटने की प्रार्थना करती ; किन्तु प्रकाश को देर हो ही जाती । आज वह क्रोध में भरी पति से उलझने का निश्चय किये बैठी थी । उसने खाने के बर्तन मेज़ से उठाये और उन्हें अलमारी में रखने जा ही रही थी कि बाहर से घंटी की आवाज़ आई । वह थोड़ी देर खड़ी घन्टी को बजते सुनती रही और फिर द्वार की ओर बढ़ी ।

किवाड़ खोलते ही वह झेंप गई और तेज़ी से आँचल को सँवारते हुए उसने नमस्कार के लिए दोनों हाथ उठा दिए । आने वाले ने मुस्कराकर अभिनन्दन का उत्तर दिया और झट पूछा ।

"क्या प्रकाश घर पर है ?"

"नहीं, सेठजी ! आइए‥ अन्दर आ जाइए ।" कल्पना ने सेठजी को उत्तर दिया ।

सेठजी बिना किसी झिझक के भीतर आ गए । जमना ने उन्हें सादर ड्राइंग-रूम में बिठाया और बोली—

"क्या वह स्टूडियो से जल्दी आ गए हैं ?

"वह गया ही कहाँ था ?" सेठजी ने कमरे की चीजों को ध्यान-पूर्वक देखते हुए कहा ।

जमना को पहले ही शंका थी । वह चुप हो गई ।

नौकरानी भीतर आई और जमना ने सम्भलकर सेठजी से पूछा—

"क्या लीजिएगा…चाय या ठण्डा ?"

"नहीं, तकल्लुफ़ की ज़रूरत नहीं…मैं तो…"

"कुछ तो लीजिए…कभी-कभार तो आप आए हैं ।"

"तो ठण्डा चलेगा…"

जमना ने नौकरानी को शर्बत लाने का संकेत किया और सेठजी से बोली—

"आप स्टूडियों से आ रहे हैं न…"

"जी…"

"तो क्या आज वह काम पर नहीं गए ?"

"आज ?…" वह मुस्कराकर बोले, "वह तो छै दिन से नहीं आया ।"

"क्यों ?" जमना का हृदय धक् से रह गया ।

"क्या उसने आपको बताया नहीं ?"

"क्या ?"

"उसने मेरी कम्पनी से काम छोड़ दिया है ।"

"जी…" जमना के होंठ खुले-के-खुले रह गए । उसके हृदय पर एक चोट-सी लगी और वह फटी आँखों से सेठजी को देखने लगी ।

"वह अपनी फ़िल्म बनाने में लगा है ।"

"अपनी फ़िल्म…इसके लिए तो बहुत पैसा चाहिए ।"

"इसका बन्दोबस्त भी हो चुका है…रत्ना उसकी बराबर की हिस्सेदार है ।"

रत्ना का नाम सुनते ही जमना के हृदय में गोली-सी लगी । इतने में नौकरानी शर्बत लेकर आ गई । सेठजी गिलास मुँह से लगाकर कमरे में जमना के मनोभाव को पढ़ने का प्रयत्न करने लगे । थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा और फिर सेठजी बोले—

"कहना तो नहीं चाहता लेकिन बिना कहे रह भी नहीं सकता ।"

"क्या सेठजी ?"

"रत्ना उसकी ज़िन्दगी को तो बरबाद कर ही रही है……मैं यह नहीं चाहता कि वह तुम्हारी घरेलू ज़िन्दगी को भी बरबाद करे ।"

"नहीं सेठजी…मुझे विश्वास है मेरे पति ऐसे नहीं…वह तो केवल रत्ना की आवाज़ के दिलदादा हैं ।"

"बात अगर यहीं तक रहती तो मैं शायद इस घर में कभी न

आता···बात यह है कि आपका पति अपना फ़र्ज़ भूलकर उस फ़िल्म ऐक्ट्रैस का दीवाना बन चुका है···और उसके इशारे पर अपनी पूरी दौलत लुटाने को तैयार है।"

"नहीं···नहीं, वह ऐसे नहीं·· आप मुझे यह सब क्यों सुनाने आये हैं ?···" जमना ने सेठजी की बात का विरोध किया।

"आप अभी भोली हैं,···आप हमारी फ़िल्मी दुनियाँ की खूबसूरत नागिनों के ज़हर का अन्दाज़ा नहीं लगा सकतीं—दौलत और इज़्ज़त गई तो शायद कभी लौट आए लेकिन आपने एक बार अपने पति को दूसरे के हवाले कर दिया तो आप कभी उसे न पा सकेंगी।"

जमना चुपचाप सेठजी की बातों को सुनती रही की और वह उसे भड़काते रहे···उसकी दुखी धमनियों को दबाते रहे। वह जानते थे कि जमना से बढ़कर कोई और ऐसा हथियार नहीं जो रत्ना और प्रकाश को अलग कर सके···इन दोनों की अनबन ही पर कम्पनी की सफलता निर्भर थी। यह चिंगारी छोड़कर उठ खड़े हुए और जमना से जाने की आज्ञा लेकर किवाड़ की ओर चले।

जमना इस रहस्य को जानकर चकित खड़ी थी। उसके मस्तिष्क में संघर्षमय विचारों का चक्र-सा चल रहा था। जब सेठजी द्वार पर पहुँच गए तो वह एकाएक सँभली और उन्हें रोकते हुए बोली—

"सुनिये—ज़रा ठहरिये।"

सेठजी खड़े हो गये और मुड़कर उसे देखने लगे। जमना उनके पास आकर खड़ी हो गई और बोली—

"अब क्या होगा सेठजी ?"

"अगर आपको अपनी ज़िन्दगी और अपने पति की भलाई चाहिये तो उसे उस नागिन के फंदे से अलग करवा दो।"

सेठजी यह कहकर झट बाहर निकल गए, किन्तु जमना के लिए वह उलझनों का एक तंतुजाल छोड़ गए। जिस बात से वह डर रही थी वह आज वास्तविकता बनकर उसकी आँखों के सामने आ खड़ी हुई

थी । उसे प्रकाश पर बड़ा क्रोध आया कि उसने नौकरी छोड़ते हुए उसे विश्वास में नहीं लिया...घर में बात तक नहीं की...वह सवेरे से उसकी प्रतीक्षा में बिना खाये-पिये बैठी थी और वह अपनी रत्ना को लिए दूर कहीं किसी कोने में प्रेम के खेल खेल रहा है । वह उसके लिए अपना सब-कुछ न्योछावर कर रही थी और वह था कि उसका तनिक भी ध्यान नहीं करता था । जमना पागल-सी हो गई । एकाएक इन सोचों ने उसके मस्तिष्क का सन्तुलन बिगाड़ दिया । वह क्रोध में भरी रसोईघर में आई और खाने भरे हुए सब बर्तन फ़र्श पर दे मारे ।

प्रकाश और रत्ना जब लाइट-हाउस वाले टापू से लौटे तो अँधेरा हो चुका था । आते हुए रास्ते में रत्ना की गाड़ी ख़राब हो गई थी । उसे प्रकाश की गाड़ी में ही आना पड़ा । आज वह दोनों अत्यधिक प्रसन्न थे । वह गाना पूरा हो चुका था और दूसरे ही दिन उसे रिकार्ड कराना निश्चित हो पाया था ।

गाड़ी से उतरते ही रत्ना ने अपने मकान की ओर देखा । बाल्कनी की खिड़कियाँ खुली थीं जिनसे ज्ञात होता था कि रोज़ी, साग-सब्जी लेकर बाज़ार से लौट आई थी । उसने प्रकाश को ऊपर आने की विनती की ; किन्तु प्रकाश ने विनम्र विवशता प्रगट करते हुए क्षमा माँगी । रत्ना ने अधिक आग्रह करना उचित न समझा । वह जानती थी कि उसे जमना से एक महत्वपूर्ण बात करनी है...वह बात जिस पर उसके जीवन का सब-कुछ निर्भर था ।

जमना...जमना का विचार आते ही उसका हृदय काँप उठा और वह सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते रुक गई । अचानक उसके मस्तिष्क में विचार आया, यदि जमना के स्थान पर वह स्वयं होती तो क्या वह घर में सौत लाने की आज्ञा दे देती ; वह स्वयं इसका उत्तर न दे सकी और तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ गई ।

अभी उसने ड्राइंग-रूम में प्रवेश किया ही था कि झटके के साथ एकाएक रुक गई । जैसे अपने विचारों में खोई, किसी और के मकान

में घुस आई हो। वह सँभली और भौचक-सी सामने सोफ़े पर बैठी जमना को देखने लगी। वह मौन और गम्भीर बैठी उसीकी प्रतीक्षा कर रही थी। न जाने क्यों आज जमना को देखते ही वह काँप-सी गई बड़ी कठिनता से अपनी भावना को छिपाते वह बोली—

"जमना! तुम…"

"हूँ"

"अकेली आई हो क्या?"

"क्या करती…वह तो घर पर थे नहीं।"

"मैं क्या जानूँ तुम ऊपर हो…वह अभी मुझे अपनी गाड़ी में छोड़ कर गए हैं।"

"मैं जानती हूँ;" मुँह फुलाये उसने उत्तर दिया।

"तो आवाज़ देकर उन्हें रोक लिया होता…"

"मैं इस समय उनसे नहीं तुमसे मिलने आई हूँ।"

"ओह! तब तो मैं बड़ी खुश-नसीब हूँ।"

"क्यों?"

"तुम जो आज अचानक मेरे यहाँ आई हो…खबर दे दी होती, मैं जल्दी घर लौट आती।"

"सुना है आजकल आप दोनों कोई अपनी फ़िल्म बनाने की तैयारी में हैं…। बहुत काम भी है।"

"हाँ…मरने की भी फ़ुरसत नहीं…"

"जिसके पास जीने के हज़ारों साधन हों उसे मर कर लेना भी क्या है;" जमना ने 'साधन' शब्द पर बल देकर कहा।

रत्ना उसका व्यंगात्मक वाक्य सुनकर झेंप-सी गई। और बात का विषय बदलते हुए बोली—

"जमना! मैं और प्रकाशजी मिलकर एक बहुत बड़ी फ़िल्म बनाने जा रहे हैं।"

"सब सुन चुकी हूँ…लेकिन इससे क्या मिलेगा?"

"सब-कुछ ;" रत्ना पास आते बोली—"नाम···इज्ज़त···दौलत।"

"रत्ना !"

"हूँ···"

"यह सब तो तुम्हारे पास है ही।"

"है···लेकिन, इनकी भूख तो कभी मिटती नहीं···"

"तुम्हें मिटानी ही होगी रत्ना !" जमना तिलमिलाकर बोली। और रत्ना के सामने आ खड़ी हुई। रत्ना उसके मुख पर दृष्टि गड़ाए बोली—

"ऐसा लगता है जमना ! किसीने तुम्हारे कान भर दिये हैं···कोई ज़हर उगला है किसीने···"

"किन्तु, मैं वह ज़हर तुम्हारे पास नहीं लाई···मैं तो सीधा-साधा अधिकार माँगने आई हूँ···जीने काअधिकार।"

"यह आज तुम कैसी बातें कर रही हो ?" आश्चर्य-चकित रत्ना ने जमना पर प्रश्न किया।

"वही जो मुझे नहीं करना चाहिये······रत्ना ! मेरा प्रकाश मुझे लौटा दो···!"

"ओह ! तो तुम मुझसे अपना शौहर माँगने आई हो···पर वह तो कबके जा चुके हैं···;" रत्ना ने सत्य को जानने हुए भी नासमझ बनकर कहा।

"आज गए हैं···तो कल फिर लौट भी आयेंगे···"

"तो, तुम उन्हें यहाँ आने से रोक दो······तुम तो उनकी पत्नी हो···;" क्रोध को दबाकर रत्ना ने कहा और उँगलियाँ तोड़ने लगी।

"यदि ऐसा कर सकती, तो तुम्हारे द्वार पर अपने सुहाग की भीख माँगने क्यों आती···"

"तो मुझे क्या करना होगा ?" रत्ना ने कहा।

उनसे दूर होना होगा······यही मेरी प्रार्थना है···।"

"ओह !···अगर मैं यह न कर सकूँ तो;" रत्ना ने जमना की आँखों-में-आँखें डालकर कहा।

"तो मैं आत्म-हत्या कर लूंगी···और इसकी उत्तरदायी होगी तुम !"

"यूँ लगता है, तुम्हें अपनी मुहब्बत पर ऐतबार नहीं रहा·· तुम्हारा प्यार सच्चा नहीं···"

"तुम प्यार की कीमत क्या जानो······जिसका धंधा जन्म से ही हाव-भाव का सौदा करना हो···जिसके रक्त में शराफ़त की बू भी न हो···वह मुझे प्यार करना क्या सिखायेगी ?···यदि ऐसा होता तो तुम मेरे सुहाग पर कभी डाका डालने का प्रयत्न न करतीं···काश, तुम्हारे सीने में भी दिल होता !"

"तो क्या है ?" रत्ना ने कहा।

"पत्थर का टुकड़ा···जिसे धन-दौलत और ऐश्वर्य के जीवन के सिवा कुछ न चाहिए···हरजाई हो कर तुम ब्याहता स्त्री के मन का अनुमान कैसे लगा सकती हो, तुम इस जीवन का आनन्द क्या जानो ?"

"जमना !—" रत्ना आवेश में चिल्लाई। जमना की आँखों में आँसू छलक आये थे। रत्ना ने सिर से पाँव तक उस सुहागिन को निहारा जिसने उसीके घर आकर उसका अपमान किया था। यदि वह प्रकाश की पत्नी न होती तो कदाचित् वह अपने अपमान का कठोर उत्तर देती। परन्तु वह सारा क्रोध पी गई और धीरे-से बोली—

"तो तुम्हें मेरी मुहब्बत की कीमत देनी होगी !"

"क्या ?" जमना आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगी।

"पचास हज़ार···"

"पचास हज़ार·· " जमना ने चकित हो रत्ना की बात दोहराई।

"हाँ···पचास हज़ार···इसलिये कि दौलत ही मेरी जिन्दगी है···और मेरी हर अदा की कीमत होती है···तुम्हारे शौहर ने न जाने मेरी कितनी अदाओं की कीमत चुकानी है···अगर तुमको उनका प्यार चाहिए तो यही उसकी कीमत है।"

"किन्तु·· इतनी बड़ी रकम···"

"अपने पति की खातिर तो यह कुछ भी नहीं। घर में नकदी होगी

"...गहने होंगे...कुछ कसर हो तो कर्ज़ लिया जा सकता है...सोच लो सौदा कुछ बुरा नहीं..."

"और यह न हो सका तो ?"

"तो...तुम्हारा पति तुम्हें नहीं मिल सकता, यही मेरा फ़ैसला है। रत्ना ने कहा और बिना उसका उत्तर लिए दूसरे कमरे में चली गई। वह क्रोध से पागल हो रही थी...आज उसने अपने अस्तित्व की वास्तविकता को समाज के तराज़ू में तुलते देखा था...आज उसे भान हुआ था कि समाज में उसका स्थान क्या है ? रत्ना ने खिड़की में से झाँक कर देखा, जमना हारी-थकी-सी सड़क के पार...टैक्सी की ओर जा रही थी। शायद वह दिल के पलड़े पर पचास हज़ार की रकम और पति को तौल रही थी कि दोनों में कौन भारी है !

उसके कानों में प्रकाश के कहे यह शब्द गूँज उठे, "तुमने अभी जमना के दिल को नहीं परखा...वह मेरी खुशी के लिए कुछ भी कर सकती है।" रत्ना के होंठों पर एक व्यंगात्मक-सी मुस्कान खेल गई।

रैन गुज़रती जा रही थी...दिन-भर की थकी-हारी दुनियाँ सपनों में खोई थी...; किन्तु रत्ना और जमना की आँखों में नींद न थी...दोनों व्याकुल थीं...रत्ना का तकिया आँसुओं से भीग चुका था...जमना एक असमंजस में खोई करवटें बदल रही थी। उसके साथ के पंलग पर प्रकाश खुर्राटे ले रहा था। कभी वह उसे और कभी खुली खिड़की में से आकाश पर चमकते सितारों को देखती। उसके मस्तिष्क में एक ही विचार निरन्तर चोटें लगा रहा था...रत्ना और प्रकाश...

———

सत्तरह

"रोज़ी ने बढ़कर किवाड़ खोला और प्रकाश को देखकर एक ओर हट गई।

"मिस साहिबा घर पर हैं क्या ?" प्रकाश ने भीतर आते ही प्रश्न किया।

"जी, सो रही हैं।"

"रात देर से सोई थीं क्या ?" वह पूछता हुआ प्यानो के समीप जा पहुँचा। उसके हाथ प्यानो पर पड़े और उससे ध्वनि निकली... कमरे में गूँज उठी और फिर मौन छा गया..."शायद तबीअत कुछ ठीक नहीं है"; रोज़ी ने धीरे-से कहा, और क्षण-भर रुककर पूछने लगी ; "जगा दूँ क्या ?"

"नहीं, मैं खुद जगा लूँगा।"

प्रकाश प्यानो से उठा और रत्ना के सोने वाले कमरे तक पहुँच गया। रत्ना ने पैरों की आहट सुनी और करवट बदल ली।

"अन्दर आ सकता हूँ क्या ?" प्रकाश ने द्वार पर खड़े होकर पूछा। रत्ना ने मुँह उसकी ओर मोड़ा और ज़रा ऊँची उठकर बोली —

"आइये..."

"सुना है कि दुश्मनों की तबीअत कुछ नासाज़ है" ; वह पास आते बोला।

"जी, आपकी मेहरबानी है ;" रत्ना के स्वर में व्यंग था।

"हमारी···कोई ग़ुस्ताख़ी हुई हो तो माफ़ी चाहता हूँ···इजाज़त हो तो कुछ पूछूँ ?"

"कहिए ?"

"कसूर तो बता दीजिए !"

रत्ना मौन हो गई, उसकी पलकों में आँसू आ ठहरे थे। वह सोचने लगी कि यह क्या समस्या है, पत्नी जहाँ आग लगा गई है···वहाँ पति के माथे पर बल भी नहीं। वह सोच ही रही थी कि प्रकाश ने उसके मौन को भंग किया—

"मैं समझता हूँ तुम मुझसे नाराज़ हो ?"

"क्यों ?"

"जज़बात के बहाव में मैंने तुम्हारे दिल को कुरेदना चाहा···"

"नहीं तो···"

"तो फिर क्या है यह···उदास···रोई-सी मुरझाई सूरत···कसी हुई भवें···माथे पर थकान की सलवटें···अगर यह ऐक्टिंग है, तो खूब है··· और हक़ीकत है तो तुम्हें मेरी सौगन्ध जो बयान न करो···"

रत्ना को विश्वास हो गया कि प्रकाश रात के किस्से से बिलकुल अनभिज्ञ था।

"कल रात से सख्त सिर-दर्द है।" रत्ना मन की बात को छिपाते हुए बोली।

"यह दर्द भी अजीब है···कह दीजिए, दर्द है और बला का···कोई देख तो नहीं सकता इसे···न दूसरा कोई अन्दाज़ा ही लगा सकता है।"

"आप तो लगा सकते हैं ?" रत्ना ने बलपूर्वक होंठों पर फीकी मुस्कराहट लाते कहा।

"मैं ! अच्छा लाओ तो ज़रा नब्ज़—"

रत्ना ने कम्बल में से हाथ निकाला और प्रकाश के सामने रख दिया।

"तुम्हें तो बुख़ार है।"

"होगा—"

"कोई दवा-दारू ?"

"उसकी ज़रूरत नहीं।"

"तो काम कैसे चलेगा ?"

"आप आरकैस्ट्रा का बन्दोबस्त कीजिए···मैं रिकार्डिंग के लिए तैयार हूँ।"

"नहीं, नहीं···बुख़ार में यह काम नहीं होगा···पहले जान फिर जहान।"

"नहीं प्रकाशजी ! यह गाना आज ही रिकार्ड होगा···वक्त बहुत कम है।"

"लेकिन अपनी हालत तो देखो···कहीं तबीअत बिगड़ गई तो··· "

"मैं अपने मिज़ाज से वाक़िफ़ हूँ, आप फ़िक्र मत कीजिए···चलिए, बड़े कमरे में चलकर बैठिए, मैं फ़ौरन तैयार होकर आती हूँ।"

प्रकाश के बहुत मना करने पर भी रत्ना न मानी और चलने की तैयारी करने लगी। थोड़े समय में ही वह कपड़े बदलकर आ गई और बोली—

"चलिए।"

"रत्ना !"

"जी।"

"बुख़ार में आवाज़ भी तो बिगड़ सकती है ?"

"घबराइए नहीं, मेरी आवाज़ मामूली हरारत से नहीं बिगड़ेगी।"

प्रकाश कुछ न कह सका और दोनों कार में बैठकर गाना रिकार्ड करने स्टूडियो की ओर चल पड़े। पूरे रास्ते रत्ना चुप रही। उसके मुख से स्पष्ट था कि वह रात-भर नहीं सोई और रोती रही है। प्रकाश बार-बार उसे सन्देहमयी-दृष्टि से देखता; किन्तु कुछ पूछने का साहस न पाता। आख़िर बड़ी देर के मौन को तोड़ते हुए प्रकाश ने पुकारा—

"रत्ना !···"

"जी···"

"जानती हो आज सुबह मैंने जमना से साफ़-साफ़ कह दिया।" उसने रुकते-रुकते कहा।

"क्या ?" वह खोई-सी चौंक पड़ी।

"मैं और तुम मिलकर एक फ़िल्म बनाने जा रहे हैं।"

"फिर ?···"

"वह क्या कहती···चुप रही···उसकी खामोशी ही रज़ामन्दी का सुबूत है।"

"आप तो उससे कुछ और पूछने वाले थे ?"

"क्या ? ओह···वह शादी की बात···अभी नहीं।"

"क्यों ?"

"रात वह किसी सहेली से मिलने गई थी···देर से लौटी···और कुछ मिज़ाज भी गर्म नज़र आता था···मैंने सोचा दो-एक दिन ठहरकर बात छेड़ूंगा।"

रत्ना चुप हो गई; किन्तु उसका दुखी मन कह रहा था कि अब यह बेकार है···इसकी ज़रूरत न पड़ेगी।

गाना रिकार्ड होते-होते शाम के छः बज गये। रत्ना की आवाज़ प्रकाश के सैट किये साज़ों पर पूरी उतरी। उनकी फ़िल्म का सबसे महत्वपूर्ण गाना सफल रहा था। प्रकाश अति प्रसन्न था। उसने रत्ना को तो आराम करने के लिए घर भिजवा दिया और स्वयं दूसरी धुनों के लिए आरकैस्ट्रा पर अभ्यास करने लगा।

शाम तक रत्ना का बुखार उतर गया। उसने थकान दूर करने के लिये गर्म पानी का स्नान लिया और ड्रैसिंग गाउन पहनकर अपने कमरे में आई। रोज़ी ने मेज़ पर चाय का सामान लगा रखा था। घर में सर्वत्र शांति छाई हुई थी। नहा चुकने के पश्चात् वह भी एक आराम अनुभव कर रही थी।

अचानक उसे यों अनुभव हुआ कि बड़े कमरे में कोई खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह गाउन की रस्सी ठीक करती हुई पर्दा उठा कर भीतर आई और जमना को देखकर वहीं रुक गई। अपने आँचल में कुछ छिपाये वह सोफ़े का सहारा लिए खड़ी उसे ही देख रही थी। रत्ना को ऐसे लगा कि आँचल में वह हथियार लाई है जिसके द्वारा वह उसकी हत्या कर डालेगी।

जमना सोफ़े से हटकर उसके सामने आ गई और बिना कोई बात किये उसने काँपती उँगलियों से अपने आँचल में छिपाया हुआ अटैची केस खोलकर नीचे कालीन पर रख दिया। क्षण-भर के लिए रत्ना की आँखें चुँधियाईं और फिर उनके आगे अँधेरा-सा छा गया। अटैची गहनों और नोटों से भरपूर थी।

जमना ने सब गहने और नोट नीचे बिखेर दिये और आगे बढ़कर बोली—

"यह रही मेरी सब पूंजी···" जमना की आँखों में आँसू ढलक आये थे। क्षण-भर रुककर उसने बात चालू रखी; इसका ज़र्रा-ज़र्रा बेचकर अपनी विलास-पूर्ति कर लो···फिर न कहना किसी सुहागिन ने धन को अपने सुहाग से बढ़कर जाना···भगवान ने तुम्हें नारी का रूप दिया है केवल···मन नहीं···यह सौन्दर्य का ढाँचा बिना हृदय के पत्थर है और इसकी कोई कीमत नहीं···जीवन-भर हाव-भाव तो बेचे हैं तुमने किन्तु तुम्हारे दिल का कोई ख़रीदार नहीं इसीलिए कि यह वस्तु तुम्हारे पास है नहीं।"

रत्ना चुपचाप यह सब सुनती रही और जमना जब साँस लेने को रुकी तो उसने आगे बढ़कर गहनों और नोटों की ढेरी को ज़ोर से ठोकर लगाई। जमना घबराकर एक ओर खड़ी हो गई।

बड़ी देर से मौन खड़ी रत्ना कड़कती आवाज़ में बोली—

"जाओ···ले जाओ यह सब पूँजी···शायद तुम्हारे बुढ़ापे में काम आए···और अपने पति को भी जिससे मेरा अब कोई सरोकार नहीं

रहेगा इस जिन्दगी में···जाओ मेरा यह तुम पर एक अहसान है···एक नीच और जलील औरत का एक सुहागिन पर अहसान···जाओ···निकल जाओ···"रत्ना ने क्रोध में यह कहा और मुँह मोड़ कर खड़ी हो गई।

जमना कुछ देर खड़ी यह सब देखती रही और फिर बिखरी हुई चीज़ों को समेटकर अटैंची में डालने लगी। रत्ना ने मुड़कर उसकी ओर नहीं देखा। अटैंची को फिर उसी प्रकार उठाकर जमना सीढ़ियाँ उतरने लगी। मौन कमरे में उसके लौटते पाँव की आहट सुनकर रत्ना ने एकाएक पलटकर देखा और भाग कर सीढ़ियों के पास आई। जमना क्षण-भर के लिए रुक गई। रत्ना ने जाने से पहले उसे एक बार फिर सम्बोधित किया—

"अगर तुम्हें प्रकाश को अपनाना है···तो यह दौलत, यह गहने काम न आयेंगे···इसके लिए अपने सीने में रत्ना का-सा दिल पैदा करो।" यह कहकर उसने ज़ोर से किवाड़ वन्द कर लिये।

वातावरण में फिर सन्नाटा छा गया। जमना कुछ समय सन्न-सी वहीं दुबकी खड़ी रही और फिर धीरे-धीरे-सीढ़ियाँ उतर गई। उसके मस्तिष्क में खलबली मची थी। वह रत्ना के मन की गहराई को पा न सकी थी। उसके कानों में रत्ना के अन्तिम शब्द गूँज रहे थे, "अगर प्रकाश को अपनाना है तो अपने सीने में रत्ना का-सा दिल पैदा करो···" उसने हृदय में एक तीव्र पीड़ा अनुभव की और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा वह निकली। इससे पूर्व उसने कभी ऐसी पराजय का सामना नहीं किया था। बड़ी कठिनता से वह आँसू पोंछती हुई टैक्सी-स्टैण्ड की ओर बढ़ी और झट टैक्सी में बैठ गई।

प्रकाश जब घर पहुँचा तो रात के दस बज चुके थे। सीढ़ियों से चढ़ते हुए ऊपर रेडियो की आवाज़ सुनकर उसने अनुमान लगाया कि जमना अभी तक जाग रही थी। बाहर का किवाड़ आधा खुला था। प्रकाश गैलरी को पार करता हुआ ड्राइंग-रूम में पहुँच गया। घर की सब बत्तियाँ जल रही थीं। लक्ष्मी सोफ़े पर ही सो रही थी। उसने इधर-

उधर दृष्टि दौड़ाई ; किन्तु जमना कमरे में कहीं दिखाई न दी । रेडियो पर धीरे-धीरे सितार की कोई धुन बज रही थी ।

प्रकाश ने रेडियो को थोड़ा उँचा किया और सोफ़े पर से लक्ष्मी को उठाकर सोने के कमरे में ले आया । रसोईघर से स्टोव जलने की आवाज़ आ रही थी । प्रकाश को यह कुछ अनोखा-सा लगा—आज पहली-बार उसने इतनी रात गये घर में खाना पकते देखा था । जिस घर में प्रवेश करते ही होने वाली किसी झड़प का ध्यान करके उसका मन बैठ जाता था, आज वहाँ का बदला हुआ वातावरण देखकर वह मन-ही-मन मुस्कराया…दिन-भर की थकान क्षण में लुप्त हो गई ।

बच्ची को पलंग पर सुलाकर वह चुपके से रसोईघर की देहली पर आ खड़ा हुआ । जमना स्टोव पर कुछ पका रही थी । गर्म पकवान की सुगंध से उसके मुँह में पानी भर आया ।

"जमना !…" उसने धीरे-से पुकारा ।

अपना नाम सुनते ही जमना ने पलटकर पति को देखा और आँचल ठीक करते हुए बोली—

"आप आगये ?…"

"देखो…आ ही गया हूँ…" यह कहते हुए आगे बढ़ने लगा कि एकाएक उसके जूतों की ओर संकेत करते हुए जमना ने रोक दिया—

"ठहरिये…यह क्या करते हैं ?"

"क्यों ?"…ओह ! यह जूते…" प्रकाश ने अपनी भूल को अनुभव किया और फिर देहली के बाहर आ कर बोला—

"क्या बात है आज…किसी अतिथि की प्रतीक्षा है ?"

"जी"…वह बलपूर्वक की मुस्कान उत्पन्न करते बोली ।

"ऐसा भाग्यवान कौन है जिसके लिए तुम अपनी नींद को नष्ट कर रही हो ।"

"रत्ना ने मुड़कर स्टोव पर रखे पतीले में कड़छी चलाई और धीरे से बोली—

"आप···!"

प्रकाश मुस्कराकर ड्राइंग-रूम में लौटने के लिए मुड़ा ही था कि जमना ने पीछे से पुकारकर रोक लिया।

"स्नान के लिए पानी रखूं?" जमना पूछ रही थी।

"नहीं···आज नहाने को मन नहीं।"

"तो बैठिये···मैं आई···"

प्रकाश ड्राइंग-रूम में आ कर सितार की धुन सुनने लगा। उसके कान रेडियो पर लगे थे; किन्तु मन इस एकाएक परिवर्तन का कारण सोच रहा था···यह तो एक अनहोनी बात थी···घर का वातावरण तो इतना सुहावना कभी नहीं हुआ। यह क्या जादू है?

वह इस विचित्र-परिवर्तन पर विचार कर ही रहा था कि जमना ने एक शीशे का गिलास और सोडे की बोतल उसके सामने रख दी। प्रकाश ने अनहोनी देखी···उसने आज पूरा मेकअप करके नई सुन्दर साड़ी पहन रखी थी। उसका आश्चर्य बढ़ता चला जा रहा था···वह कुछ भी न समझ सका। जमना गिलास तिपाई पर रखकर अलमारी में से मदिरा की बोतल निकाल लाई और कॉर्क खोलते हुए बोली—

"लीजिए···"

"यह क्या?" प्रकाश अनोखे असमंजस में था।

"जमना ने प्यार-भरी उन्मादित दृष्टि से उसकी ओर देखा और बोली—

"एक आध पैग लीजिये न! थकान दूर हो जायेगी।"

प्रकाश ने उसकी अँखड़ियों में ऐसा कोमल भाव पहले नहीं देखा था। जमना ने बोतल से कुछ मदिरा गिलास में उँडेली और फिर सोडा मिला कर प्रकाश की ओर बढ़ाते हुए बोली—

"पीजिए···"

"डरता हूँ···कहीं कोई परीक्षा तो नहीं ले रहीं हो मेरी।" प्रकाश ने गिलास हाथ में उठा लिया।

"डरते हैं आप ! जमना एकाएक गम्भीर हो गई।

"क्यों नहीं !" उसने एक घूंट पीते हुए पूछा।

"यदि आप डरते तो यूँ इतनी रात गये घर न लौटते।"

"ओह !·· वास्तव में कुछ दिन से काम बहुत बढ़ गया है जमना ! नई कम्पनी···नये साधन···नया प्रबंध···सब बोझ अपने ही सिर पर है।"

"तो कुछ बोझ अपनी पार्टनर (Partner) पर डाल दीजिए न।"

"तुम्हारा आशय रत्ना से है···वह बिचारी व्यापार की बातें क्या समझे···वह मेरी सहायता के लिए मेरे साथ है···यही बहुत-कुछ है··· जमना ! एक खुशी की बात सुनाऊँ।" उसने एक और घूँट कंठ में उतार लिया।

"सुनाइये···" जमना ने बर्फ़ की डली गिलास में डालते कहा।

"हमारी फ़िल्म का सबसे बढ़िया गाना आज रिकार्ड हो गया है।" प्रकाश के मुख से प्रसन्नता फूट पड़ती थी।

"कब तक सुनवाइयेगा हमें ?"

"फ़िल्म तैयार हो जाने पर···"

"क्यों ? कल···कल ही क्यों नहीं ?"

"हमने यही सोचा है कि इसकी धुन को अभी गुप्त ही रखा जाए।"

"किन्तु मुझसे क्यों ?" जमना ने गिलास में थोड़ी-सी मदिरा और उँड़ेली।

"अच्छा, अवसर मिलने पर सुनवा दूँगा।"

रेडियो पर सितार का प्रोग्राम समाप्त हो गया और फ़िल्मी गीतों के रिकार्ड बजनें लगे। भाग्यवश पहला रिकार्ड होली फ़िल्म में रत्ना का ही था। रत्ना का अलाप सुनकर जमना ने झट उठकर रेडियो बन्द कर दिया।

"रेडियो क्यों बन्द कर दिया ?" प्रकाश को जमना की यह हरकत अच्छी न लगी।

"यह हल्के-फुल्के गाने कुछ अखरने लगे हैं।" जमना दूसरा कोई स्टेशन लगाने का प्रयत्न करने लगी।

"किन्तु ; यह तो मेरी रचना है...होली में रत्ना..."

"रत्ना, रत्ना-रत्ना...बस दिन-रात उसीके गाने सुनते-सुनते तो कान पक गये हैं...आप किसी और नई आवाज़ को क्यों नहीं लाते।" जमना ने कुछ चिढ़कर कहा।

"क्या तुम्हें उसकी आवाज़ अच्छी नहीं लगती ?" प्रकाश ने गम्भीर हो पूछा।

"नहीं..." ऊँची आवाज़ में जमना ने उत्तर दिया और फिर उसके गम्भीर मुख को देखकर बोली, "आवाज चाहे कितनी भी मधुर हो, मनुष्य की प्रकृति है कि वह परिवर्तन चाहता है...भिन्न-भिन्न आवाज़ें..."

"किन्तु ; सुनने वालों ने अभी यह निर्णय नहीं किया...और रत्ना की आवाज़ के दीवाने तो सैकड़ों-हज़ारों नहीं बल्कि लाखों हैं।"

"उनमें से एक आप भी हैं...इस आवाज़ के सबसे बड़े दीवाने।" जमना ने तिरछी दृष्टि डालते हुए व्यंग कसा।

"इसमें क्या सन्देह है...मेरा तो जीवन ही उसकी आवाज़ है...और सच पूछो तो मेरी कला की रक्षक ही यह आवाज़ है...इसके बिना मैं क्या हूँ...?"

"और मेरे बिना ?" प्रकाश ने बात समाप्त न की थी कि जमना ने बीच में पूछ लिया।

"प्रकाश झेंपकर चुप हो गया। शायद वह नशे में आकर बहकने लगा था। उसने शीघ्र अपने आपको सँभालने का प्रयत्न किया। जमना चुप न रह सकी और फट पड़ी—

"मैं तो आपकी कुछ नहीं...मेरा होना-न-होना आपके लिए एक समान है...वह तो आपका जीवन है...सब-कुछ है...आपकी कला को उठाती है...उसकी भावनाएँ आपके लिए पवित्र आज्ञा के समान हैं

ग्रौर मैं, जिसने पाँच बरस तक ग्रँधेरे-उजाले में पग-पग पर ग्रापका साथ दिया…दिन-रात ग्रापके सुख-चैन के लिए स्वयं कष्ट झेले…मैं कुछ भी नहीं…मैंने ग्रापकी हर कठोरता को क्या इसी दिन के लिए सहन किया है कि ग्रापके मुख से सुनूँ, "जमना ! तू कुछ भी नहीं…" जमना ने एक ही साँस में मन की भड़ास निकालनी चाही ।

प्रकाश गम्भीर मुख सिर झुकाए जमना की वातें सुनता रहा ग्रौर जब वह चुप हो गई तो उसने पास रखी बोतल से ग्राधा गिलास भरा ग्रौर एक ही घूँट में कंठ से उतारकर सोफ़े से उठ खड़ा हुग्रा । जमना की ग्राँखों में ग्राये हुए ग्राँसू स्वयं ही सूख गये । वह डरी-सी उसकी ग्रोर देखने लगी । प्रकाश ने पूरा गिलास पी चुकने के बाद एक हिचकी ली ग्रौर भावना से भारी हुए मन से बोला—

"जमना ! मैंने पहले ही कहा था तू ग्राज मेरी परीक्षा लेना चाहती है…इसी कारण तूने इतनी पिलाई कि मैं बहककर मन की हर बात उगल दूँ…ठीक है…ऐसा ही सही…तू तो ग्रपने मन का बोझ हल्का कर चुकी…ग्रब मैं भी कुछ सुना दूँ…सुन सकेगी न…कहते हैं, नारी बड़ी विशाल-हृदया होती है…"

जमना के होंठ सूख रहे थे । वह कुछ कहना चाहती थी ; किन्तु कह न सकी ग्रौर सहमी-सी पति को देखने लगी ।

प्रकाश हँस पड़ा ग्रौर इस हँसी में एक गूढ़ गम्भीरता छिपी थी… बड़ी विचित्र थी यह हँसी । वह धीरे-से जमना के पास ग्राया ग्रौर उसके कंधे पर हाथ रखते हुए बोला—

"एक समय से मन पर बोझ जमा रखा है…लाख यत्न करने पर भी उसे हटा नहीं पाता…सोचता हूँ इस बोझ को मन में लिये ही मर गया तो जन्म-जन्म तक तड़पता रहूँगा…यूँही ग्रात्मा भटकती रहेगी… ग्रौर तुम्हारे बिना है ही कौन जिसे मन की सुनाऊँ…यह घाव दिखाऊँ ।"

"रत्ना जो है…उसे सुनाइये ।" जमना बोली ।

"नहीं···वह सुनेगी तो तड़प बढ़ ही जायेगी···और फिर शायद कोई उपाय भी न रहे ।"

"कहिए आप क्या कहना चाहते हैं ?" कम्पित स्वर में जमना ने पूछा और भय से अलग हट गई। प्रकाश लड़खड़ाकर प्यानो के साथ वाली दीवार का सहारा लेकर खड़ा हो गया, जमना की आँखों में झाँकते हुए रुक-रुककर बोला—

"जमना ! मैं रत्ना को अपने जीवन में लाना चाहता हूँ···मैं उससे ब्याह करना चाहता हूँ···उसके बिना अब मैं जी न सकूँगा ।"

जमना ने दोनों कान हथेलियों से बंद कर लिए। उसमें यह सब सुनने का मनोबल न था। प्रकाश के शब्द बिच्छू के डंक के समान उसकी धमनियों में उतर गये थे···उसके अंग-अंग में एकाएक नश्तर से आ लगे और वह भाग कर बाहर जाने लगी। प्रकाश ने बढ़कर उसे रोक लिया और बोला—

"हाँ जमना ! क्या तुम मेरी इस अन्तस्तल की तड़प को मिटाने में सहायता करोगी··· तुमने मेरे लिए पहले ही बहुत कुछ किया है क्या मेरे लिए यह महा बलिदान भी न दोगी ?···मैं वचन देता हूँ—सौगन्ध खाता हूँ कि सदा तुम्हारी प्रसन्नता का ध्यान रखूँगा···तुम दोनों मिलकर रह सकती हो···जैसे दो नदियाँ मिलकर एक हो जाएँ··· बोलो···बोलो···हाँ कह दो···मैं इसी आशा के सहारे तुमसे भीख माँगता हूँ···जमना···"

जमना ने पति की आँखों में प्रार्थना की झलक देखकर पूछा—

"तो मुझसे आपका प्रेम एक ढोंग है केवल ?"

"यह तुम कैसे कहती हो ?"

"तो आप मुझ पर सौत लाने को क्यों तुले हुए हैं ?"

"उसके सिसकते साँसों को आश्रय देने के लिए···उसके मौन और पवित्र प्रेम को बदनामी से बचाने के लिए···अब मैं तुमसे क्या छिपाऊँ कि यह प्रेम एक अस्थायी-सी भावुकता के कारण नहीं बल्कि यह कला

का प्रेम है कला से···एक मानसिक और आत्मिक मेल···यह प्रेम बरसों पहले एक चिंगारी के रूप में दो हृदयों में उत्पन्न हुआ और अब ज्वाला बनकर दोनों को फूंक रहा है···तुम यह तो नहीं चाहतीं कि दोनों राख हो जाएँ···और दोनों क्यों तीनों···हम तीनों···"

"तो इसका एक ही उपाय है"

"क्या ?" प्रकाश ने झट पूछा।

"मेरी मृत्यु···मैं ही आप दोनों के रास्ते में हूँ न······आप अपने प्रेम को सफल बनाना चाहते हैं न···मैं खुशी से आप दोनों के रास्ते से हट सकती हूँ।"

"जमना···" प्रकाश तिलमिलाया, "यह तुम क्या सोच रही हो··· तुम राजपूतनी हो···वीरांगना हो···मैंने यही जानकर तुमसे अपनी मनोदशा कही है···झूठ नहीं बोला···तुम्हारे 'हाँ' कह देने से हम तीनों खुश रह सकते हैं···तुम्ही पर सब कुछ निर्भर है···" प्रकाश लड़खड़ाया और फिर मेज़ के पास जाकर शेष बची हुई मदिरा पी गया।

"आपने मुझे वीरांगना कहकर मेरा मान बढ़ाया है···इसके लिए धन्यवाद ; किन्तु आप स्वयं राजपूतों की परम्परा को भूल गये हैं··· वह एक म्यान में दो तलवारें नहीं रखते एक ही पर विश्वास रखते हैं।"

प्रकाश जमना की बातों को मन-ही-मन तौलते विनम्र भाव में बोला—

"जमना ! मैं तलवारों की बात नहीं करता···दो मानव हृदयों की बात करता हूँ जिन पर मुझे पूरा भरोसा है।"

जमना क्षण-भर मौन खड़ी सोचती रही और फिर बोली—

"मेरा उसका क्या मेल···वह एक वेश्या है···हाव-भाव बेचकर आपका मन बहला सकती है···मैं वह नहीं बन सकती।"

"जमना !···" वह क्रोध से मेज़ पर हाथ मार कर चिल्लाया। शीशे का गिलास नीचे गिरकर टूट गया। एकाएक प्रकाश ने पत्नी को

मारने के लिए हाथ उठाया और फिर कुछ सोचकर हाथ रोक लिया। जमना उसकी लाल आँखें देखकर डर गई।

"हाँ, हाँ मारिये मुझे...हाथ रोक क्यों लिया...इससे अधिक और क्या अपमान कर सकते हैं आप...एक आवारा रण्डी की संगत में आप यही 'नीचता' तो सीख सकते थे।" उसे फिर क्रोध का दौरा पड़ा।

प्रकाश से और सहन न हो सका। जमना के यह शब्द उसे तलवार के समान लगे और उसने ज़ोर से उसके गालों पर एक थप्पड़ दे मारा। जमना सन्न-सी रह गई। यह इतनी शीघ्रता से हुआ कि वह कुछ भी सोच न सकी कि क्या करे। उसके पति ने पहली बार उसे थप्पड़ मारा था—उसने अपने सुहाग का अपमान किया था। उसकी आँखों के आगे अंधकार छा गया और उसे सुध तब आई जब प्रकाश दीवार का सहारा लिए सोने के कमरे में जा रहा था।

दूसरे कमरे में जाते हुए रास्ते में ही उसका जी मचलाने लगा। उसकी दृष्टि धुँधला गई और वह गिरते-गिरते बचा। बड़ी कठिनता से वह स्नान-घर के द्वार तक पहुँचा और वहीं देहली पर बैठकर उसने उलटी कर दी। जमना ने वहीं खड़े-खड़े उसे देखा; किन्तु उसकी सहायता के लिए न बढ़ी।

प्रकाश जब सँभलकर बिस्तर पर आया तो वह चुपके से स्नान-घर साफ़ करने के लिए बढ़ी। फ़र्श पर लहू-ही-लहू बिखर रहा था। वह शराब जो कभी उसके जीवन को सुख-चैन पहुँचाती थी वह उसे ही खाने लगी थी।

सुबह जब आँख खुली तो प्रकाश का मन कुछ हल्का था। सुनहरी धूप से पूरा कमरा जगमगा रहा था। उसने साथ वाले बिस्तर पर दृष्टि दौड़ाई। जमना वहाँ न थी। यह सोचकर कि शायद वह कहीं रसोईघर में नाश्ता इत्यादि तैयार कर रही होगी, उसने आँखें बन्द कर लीं और रात वाली घटना को दोहराने लगा। थोड़ी देरे वह यूँही

लेटा रहा और फिर उठने लगा किन्तु ; उठ न सका। उसका शरीर दुख रहा था।

उसे यूँ अनुभव हुआ कि किसीने पलंग के साथ वाली तिपाई पर चाय का प्याला लाकर रखा था। उसने सोचा जमना होगी और उसे देखने के लिए आँखें खोलीं। वह उसके मुख पर रात वाली घटना की प्रतिक्रिया देखना चाहता था।

"साहब चाय—" यह आवाज़ सुनकर प्रकाश के मन को अनायास एक धचका-सा लगा। उसके सामने जमना के स्थान पर नौकरानी खड़ी थी। उसने दृष्टि घुमाकर कमरे में चारों ओर देखा और पूछा—

"लक्ष्मी कहाँ है ?"

"माँ के साथ गई है।" नौकरानी ने प्याला उसके हाथ में थमाते हुए उत्तर दिया।

"जमना घर पर नहीं क्या ?" प्रकाश ने तकिये पर पीठ टिकाते हुए धड़ ऊँचा किया।

"नहीं···जब मैं सवेरे आई तो बीबीजी लक्ष्मी को लेकर एक टैक्सी में जा रही थीं।"

"कहाँ ?" उसने झट पूछा और घबराकर कमरे में इधर-उधर देखने लगा।

"मालूम नहीं···बाबूजी···"

प्रकाश एक सोच में पड़ गया और नौकरानी उसे चुप देखकर रसोई-घर में लौट गई। कहीं रात की घटना का परिणाम तो नहीं···इस विचार ने उसे बिस्तर से उठा दिया और वह बिना मुँह से लगाए चाय का प्याला वहीं रखकर अलमारी के पास आया। अलमारी पर ताला नहीं था। उसने काँपती उँगलियों से पट खोला और स्तब्ध रह गया। जमना के कपड़े और गहने वहाँ न थे।

"वह कहाँ चली गई ?" उसके होंठों पर धीमी-सी आवाज़ थरथराई और वह तेज़ी से सब कमरे देख आया। वहाँ कोई ऐसा चिन्ह न था जो

उसे स्वयं किए गए प्रश्न का उत्तर देता। उसने कलाई पर बँधी घड़ी पर देखा। दस बज चुके थे। अभी वह सोच ही रहा था क्या करे, क्या न करे कि नौकरानी ने उसके हाथ में एक लिफ़ाफ़ा थमा दिया।

"कहाँ से मिला ?"

"आपके तकिये के नीचे···बिस्तर ठीक कर रही थी कि गिर पड़ा।"

प्रकाश ने काँपती उँगलियों से लिफ़ाफ़ा खोला और पत्र पढ़ता हुआ ड्राइंग-रूम की ओर चला आया। पत्र जमना का था जो उसे सदा के लिए छोड़ कर मायके चली गई थी। लिखा था—

"प्रकाश जी !

मैं जा रही हूँ, कहाँ ? यह आपसे छिपाना नहीं चाहती। एक ठुकराई हुई नारी का अन्तिम सहारा माता-पिता हैं या फिर मृत्यु··· लक्ष्मी न होती तो शायद मैं मृत्यु को ही उत्तम समझती; किन्तु इसको आपके जीवन का बोझ बनाकर मैं मर न सकूँगी···इसीलिए मायके जा रही हूँ···

आपको अपना न सकी इसका मन को खेद है; किन्तु यह सोचकर कि रत्ना का सहारा ही आपका जीवन है···मैं आपके प्रेम-मार्ग में दीवार नहीं बनना चाहती। वास्तव में मेरा जीवन-उद्देश्य भी आपकी प्रसन्नता है। आप प्रसन्न रहें यही प्रार्थना करती हूँ।

अपने ही सामने, रत्ना को······इसी घर में अपना अधिकार मैं नहीं दे सकती···सो विवश हूँ···

एक अन्तिम प्रार्थना है···लक्ष्मी जब बड़ी हो जाए और मैं उसका ब्याह रचाऊँ तो आप कन्या-दान करने अवश्य आइयेगा···

अभागिन

जमना—"

पत्र प्रकाश के हाथों से छूट गया। उसका पूरा शरीर पसीने से लथपथ हो गया। उसने कठिनता से पग उठाये और खिड़की में से बाहर देखने लगा। जीवन नित्य की भाँति चल रहा था,···मकानों की छतों

पर किरणों का नृत्य हो रहा था; किन्तु प्रकाश का मन डूबा जा रहा था। दिन का उजाला उसके जीवन में एक अन्धकार भर गया था।

वह दो दिन तक घर से बाहर न जा सका। उसका शरीर दुखता रहा और हल्का-सा बुखार भी...उसमें कार्य करने की शक्ति न थी... उसने घर में ही प्यानों पर कुछ धुनें बनानी चाहीं, पर सफल न हो सका...इस बीच रत्ना भी उसे मिलने न आई...

अठारह

प्रकाश को रत्ना के घर बैठे दो घन्टे बीत चुके थे। प्रतीक्षा की घड़ियाँ उससे कट न रही थीं। वह कई बार रोज़ी से पूछ चुका था… "वह कहाँ गई है…?" और रोज़ी हर वार उसे एक ही उत्तर देती… "कुछ कहा नहीं।"

आज रत्ना से मिले उसे चार दिन हो चुके थे। इस बीच में रत्ना एक बार भी उसकी कुशलता पूछने न आई थी। इससे प्रकाश को आश्चर्य हो रहा था…क्या वह स्वयं किसी उलझन में है…ऐसी क्या बात है ? वह बार-बार चिन्ता से कनपटियों को दबाता। उसने निश्चय कर लिया था कि आज वह बिना रत्ना से मिले न जायेगा।

इसी प्रतीक्षा में रात हो गई। अचानक रत्ना के घर के नीचे मोटर रुकने की आवाज़ आई और वह सँभलकर बैठ गया। उसने कलाई पर बँधी घड़ी को देखा। रात के दस बजा चाहते थे। अभी सीढ़ियाँ चढ़ने की आवाज़ न आई थी। वह उठकर बाल्कनी से झाँककर नीचे देखने लगा। रत्ना सेठजी की गाड़ी में से उतरकर उनसे हाथ मिला रही थी। यह बात प्रकाश को बड़ी अनोखी लगी…अचानक उसकी मीठी प्रतीक्षा की घड़ियों में कड़वाहट-सी भर गई और वह उनकी ओर पीठ करके खड़ा हो गया। सेठजी…और रत्ना…यह क्या खेल है ? वह सोचने लगा। भीतर-ही-भीतर उसका मन जल रहा था। गाड़ी रत्ना को छोड़ कर चली गई और उसने मुड़कर नीचे न देखा।

रत्ना पर्स को लहराती हुई भीतर आई। प्रकाश बाल्कनी में खड़ा

उसे देखता रहा। रत्ना ने देहली से ही पर्स को उछालकर सोफ़े पर फेंका और चिल्लाई—

"घर पर कोई आया था···रोज़ी !"

"कोई नहीं"···प्रकाश ने अँधेरे से बाहर आते हुए उत्तर दिया और बोला··· "शाम से तो अकेला मैं ही बैठा इन्तज़ार कर रहा हूँ।"

"प्रकाशजी आप···!" उसका मुँह आश्चर्य से खुला रह गया और फिर झट स्वयं को सँभालते बोली, "आप कब आये ?"

"शाम को पाँच बजकर दस मिनट पर···"

"ओह ! ···वक्त के तो आप बड़े पाबंद हैं···लेकिन यह चार रोज़ तक कहाँ ग़ायब रहे ?"

"तुम्हारी राह देखता रहा।" वह पास आते हुए बोला।

"क्यों ?" वह झट बोली, "काम तो स्टूडियो में होना था, घर पर नहीं।" उसके शब्दों में एक विशेष रूखापन था जो प्रकाश को बड़ा विचित्र लगा।

अभी वह कोई उत्तर न दे पाया था कि रत्ना फिर उसी स्वर में बोली—

"अब छोड़िये यह किस्सा···आइये तशरीफ़ रखिये···सेठजी ठीक ही कहते थे···व्यापार और आर्ट एक साथ नहीं चल सकते···हम यह फ़िल्म मुकम्मिल न कर सकेंगे।"

एक साँस में ही वह यह बातें यूँ कह गई जैसे कुछ हुआ ही न हो; किन्तु प्रकाश के पाँव-तले की धरती खिसक गई। वह स्थिर मूर्तिमान उसकी ओर देखने लगा। उसका रंग श्वेत पड़ गया मानो किसी बड़े मानसिक आघात ने उसके शरीर का सब लहू सोख दिया हो। उसने देखा आज न केवल रत्ना के वस्त्र नित्य से अधिक भड़कीले थे बल्कि उसकी प्रवृति में भी परिवर्तन था···यह सब ऐसा आसाधारण था कि उसका मस्तिष्क इसे स्वीकार करने से असमर्थ था। रत्ना उसके समीप आ गई और उसे सोफ़े पर बिठाते बोली—

"मैंने एक ज़रूरी फ़ैसला किया है—दिल और दिमाग़ को काबू में रखकर…"

"क्या ?" प्रकाश ने बड़ी कठिनता से होंठ खोले।

"मैं यही फ़िल्म एक बहुत बड़े पैमाने पर बनाना चाहती हूँ…सेठजी की पार्टनरशिप में…वह इस पर दस लाख रुपया लगाने को तैयार हैं।"

"यह क्या कह रही हो ?"

"एक बहुत ज़रूरी फ़ैसला…व्यापार में जज़बात से काम लेना ठीक नहीं…हमें आर्ट के साथ-साथ पब्लिक की नब्ज़ पर भी हाथ रखना है…नए ज़ाविये…नई सैंटिंग…लम्बी-चौड़ी इश्तहारबाज़ी…इन सबके लिए रुपये की ज़रूरत होगी।"

"ऐसे लगता है…तुम बहक गई हो।" प्रकाश बोला।

"नहीं…बल्कि आपको बहकने से बचा रही हूँ।"

"ऐसी कोई ज़रूरत नहीं…मुझे यह फ़िल्म नहीं बनाना।"

"लेकिन मुझे तो बनाना है…" वह झट बोली, "और इसपर बहुत खर्च हो चुका है।"

"शायद तुम भूल रही हो……फ़िल्म की कहानी…और मौसीकी का मैं ज़िम्मेदार हूँ।"

"मैं समझती हूँ…आपकी मेहनत की पूरी-पूरी कीमत अदा होगी।"

"क़ीमत ? मेरी मेहनत की ? रत्ना ! यह क्या कह रही हो ?"

"जी…आपकी माँग से ज़्यादा…कहिए…बीस, तीस, पचास हज़ार…"

प्रकाश ने कड़ी दृष्टि से उसे देखा। रत्ना के मुँह से शराब की दुर्गंध आ रही थी।

"सेठजी अगर दस लाख भी दें तो भी मेरी तरफ़ से जवाब है…"

प्रकाश ने यह कहा और जाने के लिए खड़ा हो गया। रत्ना उठकर उसके सामने आ गई और गम्भीर होकर बोली—

"आप चल दिये…ठहरियेगा नहीं…।"

"नहीं···अब चलता हूँ···सोचता हूँ बेकार ही आया था।"

"कुछ कहियेगा नहीं।"

"अभी नहीं···तुम्हें होश आ जाये तो जी खोल के कहूँगा।"

"होश···क्या मैं होश में नहीं···सेठजी ने कसमें दिला कर दो घूंट पिला दिये···उससे होश तो नहीं गया।"

"रत्ना···!" प्रकाश ने चिल्लाकर उसकी आवाज़ बन्द कर दी। दोनों थोड़ी देर तक एक-दूसरे को देखते रहे और फिर रत्ना ने कहा—

"प्रकाशजी! अपनी मर्ज़ी के मुताबिक सबको जीने का अख़त्यार है।"

"तुम्हें जीने से किसने रोका है?"

"सिसक-सिसककर जीना···दिन-रात आहें भरना···इन्तज़ार में बैठे-बैठे पत्थर हुए जाना···और इसपर मौन रहना—क्या इसीको आप जीना कहते हैं···?"

"रत्ना! तुम्हें यह आज क्या हो गया है?" प्रकाश ने उसे समझाने का प्रयत्न किया।

"ठीक ही तो हुआ है···बहुत दिन जले-नसीबों के सहारे जी कर मैंने देख लिया है···और मैं अपने नसीब ख़ुद ही बदल रही हूँ।"

प्रकाश चुपचाप सुनता रहा। रत्ना का यह व्यवहार उसके लिए पहेली बनता जा रहा था। वह फिर बोली—

"आप साज़ बजा लेते हैं···ख़ूब बजाते हैं लेकिन जो तकलीफ़ इस चोट से साज़ को पहुँचती है···उसका अन्दाज़ा आपने कभी लगाया?"

"तुम शायद अपनी ज़िन्दगी का रुख बदलना चाहती हो···मैं पूरे दिल से तुम्हारी ख़ुशियों की दुआ माँगता हूँ···लेकिन···रत्ना! एक ज़रा-सी बात मत भूलो···साज़ चाहे किसी झोंपड़ी में बजे या किसी महल में···उसे तो वही तकलीफ़ होगी···" यह कहते हुए प्रकाश जाने के लिए मुड़ा; किन्तु फिर रुक गया और पलटकर पूछने लगा—"मैं यह

पूछने की गुस्ताखी कर सकता हूँ कि तुमने अपनी जिन्दगी का पासबाँ किसे चुना है ?"

"चन्द्र सेठ···" रत्ना ने होंठ दबाकर कहा और प्रकाश की मनोदशा जाँचने के लिए उसके समीप आ खड़ी हुई।

सेठजी का नाम सुनकर प्रकाश के मन पर मानो वज्रपात हो गया उसमें और कुछ पूछने का तनिक भी बल न रहा। वह हृदय पर हाथ रखे चुपचाप देहली तक पहुँच गया। रत्ना पीछे से पुकार उठी—

"ठहरिये···"

प्रकाश के पाँव फिर रुक गए। रत्ना बिजली की तेज़ी से भीतर गई और दूसरे ही क्षण लौट आई। प्रकाश वहीं स्थिर खड़ा था। रत्ना को पास देखकर पलटा। उसके हाथ में एक चैक था। प्रकाश ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसे देखा—

"यह क्या ?"

"आपकी दो महीने की मेहनत का मुआवज़ा···दस हज़ार···मैं नहीं चाहती कि मेरी वजह से आपको काई नुकसान हो।"

"यह रहम है ?"

"कहा न व्यापार में जज़बात का कोई दखल नहीं···दोनों अलग-अलग हैं···आपने काम किया···आपको उजरत मिलनी ही चाहिए।"

"तो इसे अपने पास ही रखिए।"

"नहीं···इसे आपको लेना ही होगा···मेरा दिल न तोड़िये···ले लीजिये।" रत्ना की आवाज़ भर्रा गई।

प्रकाश ने गरदन उठाकर देखा। उसकी आँखों में दो मोटी बूँदें आँसुओं की चमक रही थीं। प्रकाश ने गम्भीर मुख पर बलपूर्वक मुस्कराहट उत्पन्न करते हुए चैक थाम लिया और बोला—"बस···"

रत्ना के उदास मुख पर एकाएक चमक आ गई। कपोलों में सूर्योदय की-सी लालिमा निखर आई। प्रकाश क्षण-भर उसको निहारता रहा और फिर चैक लौटाते बोला—

"यह लीजिये···मेरी अमानत···"

"क्यों ?"

"कल जब तुम्हारा व्याह होगा तो शायद मैं न आ सकूँ······इस रक़म से एक तोहफ़ा ले लेना···मेरी तरफ़ से···शादी का तोहफ़ा···"

प्रकाश ने यह कहा और तेज़ी से बाहर चला गया। पहले तो चुप खड़ी रत्ना उसे देखती रही···फिर उसे पुकारती हुई उसके पीछे भागी ; किन्तु प्रकाश जा चुका था। रत्ना के हाथ में चैक पकड़ा-का-पकड़ा रह गया। वह भागती हुई बाल्कनी तक आई और नीचे झाँक कर देखने लगी। प्रकाश तेज़ी से पैदल ही [illegible] उतर रहा था। सड़क पर लगे बिजली के लैम्प के उजाले में उसकी छाया लम्बी होते-होते समाप्त हो गई और रत्ना के हृदय में भयानक छाया उभरने लगी···वह सिर थामकर तिपाई पर आ बैठी···।

रात शान्त और मौन थी। वायु के हल्के झोंके उसके शरीर को छू रहे थे। नीचे की लम्बी-चौड़ी सड़कों में बम्बई की बत्तियाँ जगमगा रही थीं ; किन्तु रत्ना के हृदय का अन्धकार बढ़ता जा रहा था। वह संगमरमर की तिपाई पर लेट गई और मन की तपन को शीतल करने का प्रयत्न करने लगी।

इस घटना के चार दिन पश्चात् सेठजी की गाड़ी प्रकाश के मकान के आगे रुकी और वह तेज़ी से सीढ़ियाँ पार करके मुख्य द्वार तक जा पहुँचे···द्वार खुला था। सेठजी ने घण्टी बजाई। कोई उत्तर न मिलने पर उन्होंने द्वार को धकेलकर भीतर झाँका, सामने ड्राइंग-रूम में प्रकाश बैठा था। सेठजी तेज़ी से भीतर आये और उसे देखकर रुक गए। प्रकाश मेज़ का सहारा लिए ऊँघ रहा था। मदिरा की खाली बोतलें तथा गिलास सामने पड़ा था। वह नशे में इतना चूर था कि उसे उनके आने की आहट ही न हुई। सेठजी उसके समीप आ गये और उसका नाम पुकारने लगे। प्रकाश उनका स्वर सुनते ही चौंक पड़ा। उसने धीरे-से गरदन उठाकर सेठजी को देखा।